राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला

राजस्थान-राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यत. अखिल भारतीय तथा विशेषत राजस्थान प्रदेशीय-पुरातनकालीन
सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषा-निबद्ध
विविध वाङ्मय प्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावली

प्रबन्ध सम्पादक
डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया
उप निदेशक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (राज०)
१९७२ ई०

मुद्रक
राठी प्रिण्टर्स, जोधपुर एव समयसार प्रेस, जोधपुर

वि० स० २०२९ भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८९४

विषयानुक्रमणिका

प्रस्तावना

आयुर्वेद एक प्राचीन भारतीय शास्त्र है। चरकसहिता (सूत्रस्थान १/११-१४) के अनुसार धमार्थकाममोक्ष के साधन मे शारीरिक शक्तियो के दौर्बल्य से वाधा हुई तो कल्याणकारी ५२ ऋषियो की मण्डली हिमालय-धाम मे एकत्र हुई। सभी ऋषियो ने चिन्तन से जाना कि देवराज इन्द्र ही मृत्युलोक के रोग-शमन का उपाय बता सकते है। तदनुसार ऋषि भारद्वाज इन्द्र के पास पहुँचे और उन्होने उनसे आयुर्वेद-ज्ञान प्राप्त किया। ब्रह्मा ने ऋषियो की सुविधा हेतु आयुर्वेद-आगम को निम्न आठ भागो अर्थात् तत्रो मे विभक्त किया (सुश्रुत सहिता, सूत्रस्थान १/६) (१) शल्य (२) शालाक्य (३) कायचिकित्सा (४) भूतविद्या (५) कौमारभृत्य (६) अगदतत्र (७) रसायन और (८) वाजीकरण। कल्याणमिश्र प्रणीत 'बालतत्र' नामक आयुर्वेदिक रचना वस्तुतः कौमारभृत्य विषयक रचना है।

कौमारभृत्य - चिकित्सा के प्रथम आचार्य जीवक माने जाते हैं, जिन्होने इस तत्र का ज्ञान प्रजापति कश्यप से प्राप्त किया। तदुपरान्त पार्वतक, वधक और रावण के नाम उल्लेखनीय है। रावण की रचनाओ मे कुमारतत्र, बालचिकित्सा, नाडी-परीक्षा, अर्कप्रकाश और उड्डीशतत्र आदि उल्लेखनीय है। श्री गिरीन्द्रनाथ ने 'कुमारतत्र' का कर्त्ता लकाधिपति रावण को ही माना है (हिस्ट्रीऑफ इण्डियन मेडासिन, भाग २ पृ० ४२)

कौमारभृत्य विषयपरक अर्थात् बालतत्र विषयक अनेक आयुर्वेदीय अप्रकाशित रचनाए विभिन्न ग्रन्थ-भण्डारो मे उपलब्ध है जिनकी जानकारी चिकित्साक्षेत्र मे आवश्यक है। राजस्थान - प्राच्यविद्या - प्रतिष्ठान के जोधपुर मुख्यालय और शाखाओ मे भी एतद्विषयक अनेक अप्रकाशित रचनाए विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थो मे प्राप्त होती है। यद्यपि ऐसी अनेक रचनाओ का विवरण प्रतिष्ठान की हस्तलिखित ग्रन्थ-सूचियों मे भी प्रकाशित किया गया है। तथापि वैद्य-समाज का ध्यान अभी तक इस दिशा मे अपेक्षित रूप मे आकर्षित नही हुआ है।

कल्याण मिश्र प्रणीत 'बालतत्र' बाल-चिकित्सा सम्बन्धो एक महत्व-पूर्ण रचना है जिसकी प्रतिष्ठान के सग्रह मे अनेक प्रतिया है। यह रचना

१४ भागो में विभक्त है जिनका विवरण इस प्रकार है—

(१) षोडशवन्ध्याप्रतीकार
(२) साधारणवन्ध्यौषध-कथन
(३ पुरुषवीर्यवृद्धि-कथन
(४) गर्भाधानकाल-रुद्रस्नान-कथन
(५) गर्भिणीगर्भरक्षा-कथन
(६) सुखप्रसवोपाय-कथन
(७) दिनगृहीतवालग्रहहर
(८) मासगृहीतवालग्रहहर
(९) वर्षगृहीतवालग्रहहर
(१०) षोडशदिनमासवर्षगृहीतवालग्रह-हर
(११) सामान्यतो वालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तन-स्नान-धूपादिविधान
(१२) ज्वरहरणोपाय-कथन
(१३) शीतला-चिकित्सा-कथन
(१४) नानाप्रयोग-कथन

'वालतन्त्र' के विद्वान् सम्पादक कविराज प० विष्णुदत्तजी ने अपनी भूमिका मे 'मन्त्रमहोदधि' के सम्पादक श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य, वी ए. (द्वितीय सस्करण, सिद्धेश्वरयन्त्र, कलकत्ता सन् १८९२ ई) के पञ्चविंशस्तरग के श्लोक स० १२१ से १२५ उद्धृत करते हुए तदनुसार लिखा है—

"अहिच्छत्र द्विजच्छत्र वत्सगोत्र समुद्भव. ।।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान् ख्यातो धरातले ।।१२१।।

तत्तनूजो रामभक्त. फन्न भट्टाभिधोऽभवत् ।।
महीधरस्तदुत्पन्न. ससारासारता विदन् ।।१२२।।

निजदेश परित्यज्य गतो वाराणसी पुरीम् ।।
सेवमानो नरहरिस्तत्र ग्रथमिम व्यधात् ।।१२३।।

कल्याणाभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमै. ।।
अनेकानागम-ग्रन्थान् विलोकित मुनीश्वरै ।।१२४।।

एक ग्रन्थस्थित सर्व मन्त्राणा सारमीप्सुभि. ।।
सम्प्रार्थित. स्वमत्याऽसौ नाम्ना मन्त्रमहोदधि ।।१२५।।

इस प्रकार हमारे श्री कल्याण मिश्र अहिच्छत्र द्विजच्छत्र के वत्सगोत्री श्री रत्नाकर के पुत्र रामभक्त फन्नभट्ट के पुत्र श्री महीधर [के पुत्र रूप मे] उत्पन्न हुए। वे अपने पिता के साथ अपने देश को छोडकर वाराणसीपुरी पधारे। वहा आचार्य श्री नरहरि की सेवा मे रहते हुए कल्याण नामक अपने पुत्र तथा द्विजसत्तमो के साथ अनेकानेक आगम-ग्रन्थो के निष्णात मुनीश्वरो के वचनो को सारतत्त्वबोधी विद्वानो की इच्छा पूरी करने हेतु एक ही ग्रन्थ 'मन्त्रमहोदधि' की रचना की। अत: हमारे ग्रन्थकार श्री कल्याण मिश्र भी 'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः' की ही परम्परा के एक त्रिकालज्ञ ऋषि थे। इसमे हमे कोई सशय नही।"

वास्तव मे 'मन्त्रमहोदधि' के अनुसार कल्याण मिश्र के पूर्वजो की परम्परा निम्नप्रकारेण निर्धारित होती है—

रत्नाकर (अहिच्छत्र-द्विजच्छत्रान्वयजात)
|
फन्नभट्ट
|
महीधर (काशीवास किया, मन्त्रमहोदधि के प्रणेता)
|
कल्याण मिश्र

बालतन्त्रकार ने ग्यारहवे पटल के अन्त मे पुष्पिकान्तर्गत अपना वश-परिचय इस प्रकार दिया है—

"अहिच्छत्रान्वये जात: पण्डितैकशिरोमणि: ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सता प्रियः ॥२॥

विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवद्य ।
लक्ष्मीनृसिंहाघ्रिसरोजभृङ्गस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थ ॥३॥

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रन्थवरान्विलोक्य
परोपकाराय ववंध तन्त्र सता समालोकनयोग्यमेतत् ॥४॥

युगवेदरसाकालमिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमाया चकारेद लिलेख च शिवालये ॥५॥"

अर्थात् अहिच्छत्रवश मे पण्डित शिरोमणि एक मात्र रामचन्द्रजी की अर्चना मे निरत, सज्जनो के प्रिय पण्डित रामदास हुये। विद्वज्जनो को आनन्द देने वाले मनस्वी सर्वजनो के द्वारा अभिवन्द्य श्री लक्ष्मीनृसिंह के चरण-सरोज के भृङ्गवत् उपासक आगमार्थो को जानने वाले उनके आत्मज (रामदास के) श्री महीधर हुए। उनके पुत्र कल्याण नामक विद्वान् ने श्रेष्ठ ग्रन्थो का अवलोकन कर, परोपकार के लिए इस तत्र का निबधन किया जो अवलोकन योग्य है। सवत् १६४४ वर्ष के श्रावण मास की पूर्णिमा रविवार को इस ग्रन्थ का निर्माण हुआ और यह शिवमन्दिर मे लिखा गया।

बालतत्रकार के अनुसार उसका वश-सम्वन्धी विवरण इस प्रकार है—

रामदास (अहिच्छत्रान्वये जात)
|
महीधर
|
कल्याण (बालतत्रकर्त्ता)

इस प्रकार बालतत्रकार के वश का मत्रमहोदधिकार के वश से रामदास और फन्नभट्ट के सम्वन्ध मे अन्तर ज्ञात होता है। दोनो ग्रन्थो के कर्त्ता दोनो कल्याण भिन्न २ वश के है अथवा एक ही वश के, यह स्पष्ट निर्णय नही होता है। बालतत्रकार के पितामह रामदास और मत्रमहोदधिकार के पिता फन्नभट्ट दोनो ही राम-भक्त अवश्य थे। वास्तव मे महीधर और उनके पुत्र कल्याण दोनो ही नामो की दोनो ग्रन्थो मे समानता है। इस मत की पुष्टि राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे सगृहीत क्रमाक २२५ पर अकित कल्याण मिश्र कृत बालतत्र की भाषा वचनिका नामक प्रति से भी होती है। जिसकी पुष्पिका मे महीधर के पिता प० रामचन्द्र और महीधर के पुत्र रूप मे उक्त ग्रथ के कर्त्ता पडित कल्याण मिश्र को कल्याणदास कहा गया है जो रामदास के समीप है। अत ग्रथकार के पिता का नाम रामदास मूल के अनुसार शुद्ध है। वचनिका का अपेक्षित अश इस प्रकार है—

"अब शास्त्र का करणहारा की प्रसन्नै कहै ग्रथ करता कहै है। मैंने जो यह बालकचिकित्सा ग्रथ कह्यौ है नाना प्रकार का ग्रथा कौ देपिकरि यौह ग्रथ कह्यौ है। सा ग्रथ कोण कोण से है। आत्रय १ चरक २, सुश्रुत ३,

वाग्भट ४, हारीत ५, जोगसत ६, सनिपात कलिका ७, बगसेन ८, भावप्रकास ९, भेड १०, टोडरानद ११, जोगरतनावली १२, वैद्यविद्याविनोद १३, वैद्यकसारोद्धार १४, इत्यादिक ग्रथ की साषि ले करिगै यहै ससक्रत सलोक बध किया है। कल्याण पडित कहता है। यहै बालक की चिकित्सा उपाई कौ काल, देस, बल देषि करि किकित्सा कीजै।

अहिछता नगर कै विषै पडिता कै विषै सिरोमणि रांमचद्र नामा पडित रांमचंद्रजी की पूजा सेवा विपै सावधान। सो रामचद्र पडित कैसौ है। सतां कहतां सज्जना मै पडित मनुष्यां मै प्रिय छै। तिसकै महीधर नामा पडित पुत्र भयौ। सौ कैसौ हूवौ। पडित मनुष्या कै ताई षुस्याली कै कर्णवाले होत भये। अत्यत महा पडित होत भये। सर्व पडित जनां कौ चदनीक भये। फेर महीधर पडित कैसे होत भये। श्री लषमीजी के नृसिहजी के चरण-कमल के सेवन विषै भृ ग कहता भवरा समान होत भये। महावेदाती भये। आतमग्यानी भये। सर्वशास्त्र आगम अर्थ तिसके जाणणहार भये। महापरमागम शास्त्र के वकता भये। तिसकै पुत्र कल्याणदास नामा होत भये। महा पडित सर्वसास्त्र के वकता जाणणहार वैद्यक चिकित्सा विषै महाप्रवीण सर्वशास्त्र वैद्यक का देषि करि परोपगार कै निमित पडितां का ग्यान कै वास्तै यह 'बालक चिकित्सा' ग्रथ करण वाले कल्याणदास नामा पडित होत भये। तिसनै करी सलोक का बध करी। तिसकी भाषा खरतर गछमा माहि जती वाचक पदवी-धारक दीपचद्र इसै नामै तिसनै कह्यौ। इह संस्कृत ग्रथ कठिन(त)म है। सौ अग्यानी मदबुद्धि पुरुष ईस माही समझै नही। तिस खातरि 'बालतत्र ग्रथ भाषा वचनिका' यां त्या करी। अग्यानी मदबुद्धि कै वास्तै। और या ग्रथ विषै षोडश प्रकार की वध्या स्त्री कथन। पुरुष नामरद की चिकित्सा उपाय कथन। बालक की चिकित्सा कथन। बालक का मास दिन वरमा की चिकित्सा। वलि-विधान कथन। धाई का लक्षण कथन। दूध भारी हलका उपाई कथन। दूध सुध करण थण कै विषै दूध प्रचुर करण का उपाय और सर्व बालक का रोगां की कथन। ईसो जो बालकतत्र ग्रथ सर्वजन कै सुखकारी होवौ॥ इति श्री बालतत्र ग्रथ भाषा वचनिकाया बालक का सर्व उपाय कथन चौदमौ पटल पूरौ हूवौ १४ इति श्री बालतत्र ग्रथ सपूर्ण समाप्त सवत १८९५ शुभं भवतु कल्याणकारी॥"

वालतत्र की भापा वचनिका की एक अन्य प्रति जोधपुर-सग्रह मे

ग्रन्थाङ्क ३९८७० पर भी है जो उक्त प्रति से भिन्न है। यह पद्यवद्ध है, किन्तु यह वध्या-दोष-निवारण, गर्भधारणोपाय और दुग्ध शुद्धीकरणादि त्रिपटलात्मक है। इसमे १५ पत्र हैं और स० १९१० मे यह लिखी गई है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस ग्रथ का वैद्यो मे तथा जनसाधारण मे प्रचुर प्रचार रहा है।

उक्त वचनिका मे वर्णित अहिछ्ता नगर अथवा मूल वालतन्त्र का "अहिच्छत्र द्विजच्छत्र" और आयुर्वेद का वृहत् इतिहास" (अत्रिदेव विद्यालङ्कार कृत हिन्दी समिति, लखनऊ) के मानचित्र मे अकित गुजरात का "ब्राह्मणावाद" एक ही प्रतीत होता है। इसी इतिहास मे कल्याण मिश्र कृत वालतत्र क सूचना इस प्रकार है—

"शिशुरोग पर कल्याण का वालतत्र नामक एक ग्रन्थ है। यह काशी मे १५८८ ईसवी (१६४४ विक्रमी) मे वना है। इसके कर्त्ता वैद्य कल्याण का मूल स्थान गुजरात था। ये प्रश्नोरा ब्राह्मण थे।" पृ० ३०७.

वालतत्र मे स्वास्थ्य सम्वन्धी अनेक उपयोगी औषध-प्रयोगादि दिये गये हैं। उदाहरण के लिए वालतत्रकार ने निरोध-उपाय भी वतलाया है जिससे ज्ञात होता है कि परिवार-नियोजन सम्वन्धी विचारधारा एक मात्र पश्चिम की देन न होकर, भारतवर्ष मे वहुत पहले से प्रचलित थी—

"आरनाल परिपोपित त्र्यह वाणपुष्पसहित तु कामिनी।
सत्पुराणगुणमुष्ट (ष्टि) सेविनी नैव गर्भ धरते कदाचन" ॥२५०॥३२॥

अर्थात् वाणपुष्प सहित आरनाल से तीन दिन पोषित पुराने गुड को ४ तोला सेवन करने वाली नारी कभी भी गर्भ धारण नही करती है।

आरनाल व वाणपुष्प के सम्वन्ध मे मान्यवर भिषक्केसरी आचार्य पं० वुद्धिप्रकाश जी आयुर्वेद वाचस्पति, आचार्य आयुर्वेदाश्रम, मकराणा मुहल्ला जोधपुर ने हमारे निवेदन पर निम्नलिखित टिप्पणी दी है—तदर्थ वे प्रचुर प्रशसास्पद हैं।

"आरनाल :—पूर्वाचार्यो ने आरनाल (काञ्जी) के अनेक प्रकारो का वर्णन किया है। यथा —

(१) सर्जी क्षितिखगटङ्कणलवणान्वितमर्कभाजने त्रिदिनम्।
पर्युषितमारनालं गगनादिकजारणे शस्तम् ॥ (र हृ.त.)

भावार्थ :—इस आर्या मे गगनादि ग्रास के जारणार्थ उपयोगी काजी का वर्णन है। चावलो को उबालकर तैयार किये माड मे साजी, फिटकरी, कसीस, सोहागा, व सैन्धव (स्वेदन सस्कार मे कथित काजी के मसालो युक्त) मिलाकर तीन दिन (अम्ल होने तक) रख कर यह आरनाल की जाय। इससे गर्भप्रवृत्ति शीघ्र होती है।

(२) "अत्यम्लमारनाल च तद्भावे प्रयोजयेत्" (रस. रा. सु)

भावार्थ :—धान्याम्ल के अभाव मे पारद के स्वेदनादि सस्कारो से अत्यन्त खट्टी काजी लेनी चाहिए।

(३) "आरनाल तु गोधूमैरामै स्यान्निस्तुषीकृतैः।
पक्वैर्वा सधितैस्तत्तु सौवीरसदृश गुणैः॥ (भा. प्र)

भावार्थ :—तुषरहित कच्चे अथवा पक्के गेहू को भिगोकर आरनाल नामक काजी बनाई जाती है जिसके सौवीर सदृश गुण होते है। सौवीर बनाने का विधान भी इसी प्रकार का है :—

"सौवीरन्तु यवैरामै पक्वैर्वानिस्तुषैः कृतम्।
गोधूमैरपि सौवीरमाचार्य्या. केचिदूचिरे॥ (भा प्र.)

चरक ७/७०, ६/६ और सुश्रुत ४४/३५-४० मे अनेक औषधियो के सयोग से विभिन्न सौवीरो के बनाने का वर्णन मिलता है।

बाणपुष्प —

नील पुष्पवाली कटसरैया (पियाँवासा) को बाणपुष्प कहते हैं। इसकी गणना आचार्यो ने पुष्पवर्ग मे की है।

"रक्तपुष्पः कुरबकः पीतपुष्प. कुरण्टक।
नीलपुष्पश्चार्त्तगलः सैरेय. श्वेतपुष्पक॥ (नि र)

भावार्थ :—लालपुष्प की कटसरैया को 'कुरबक' पीतपुष्प वाली को 'कुरण्टक" नीलपुष्पवाली को "आर्त्तगल" और श्वेतपुष्पवाली को "सैरेयक" कहते है।

आर्त्तगल के पर्याय :—

"नीलपुष्पी नीलझिण्टी बाणआर्तगलस्तथा" ।

मध्यकालीन प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश मे यही योग निम्नरूपेण मिलता है।

"आरनाल परिपेषित त्र्यह या जपा कुसुममति पुष्पिणी ।
सत्पुराण गुडमुष्टि सेविनी सन्दधाति नहि गर्भमङ्गना ॥" ८/३४॥

बालतन्त्रकार ने कतिपय औषध-प्रयोग प्राचीनग्रन्थो के आधार पर दिये हैं—

प्रयोगसारप्रमुखागमेषु प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः ।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन् ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ॥
॥१ प० ॥२॥

ग्रन्थान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैः, स्वकीयैं कतिचित्तदीयैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा रुचिरा शिशूना ता देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात् ॥
॥१३ प० ॥

प्रथम पटल मे आदिवन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा, गर्भस्रावी, आदि षोडशवन्ध्या स्त्रियो का स्वरूप एवं चिकित्सा वर्णित है। यथा —

व्यक्तिनीनामवन्ध्याया. प्रमेहो भवति स्फुटम् ।
रक्तापामार्गज बीज शर्करामर्दकीफलम् ॥ १ प० ॥४५॥

साधारणवन्ध्या स्त्रियो के गर्भधारणोपाय तथा गर्भनिरोधादि प्रयोग भी प्रकरणत. वर्णित हैं। यथा —

"पत्रमेक पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्त न सशय' ॥ २ प० १६॥

गर्भिणी स्त्री पलाश के एक पत्ते को (नियमित रूप से) दूध के साथ सेवन करे तो वीर्यवान् पुत्र को प्राप्त करती है। इसमे सशय नही है।

भैषज्यरत्नावली मे निम्न पाठान्तर मिलता है।

पत्रमेक पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा च लभते पुत्र रूपवन्त न सशय. ।।व. चि ।८।।

व्यक्तिनी नाम की वन्ध्या स्त्री को प्रमेह अवश्य होता है । इस प्रकार की स्त्री को लाल अपामार्ग के वीज, शर्करा, मर्दकी का फल तथा 'रतनजोत' को गोदुग्ध के साथ पीसकर २१ दिन तक पान कराने से प्रमेह का अवश्य नाश होता है ।

इसी प्रकार साधारणवन्ध्या स्त्रियो का गर्भधारणोपाय निम्नप्रकार से बतलाया गया है । यथा—

शुठी गुडेन सपिष्ट्वा भक्षयेद्दिनसप्तकम् ।
तेन गर्भो भवेन्नार्याः सत्य सत्य मयोदितम् ।।२प०।३५।।

सोठ को पीसकर गुड के साथ मिलाकर सात दिन तक सेवन करने से वन्ध्या-स्त्री को भी गर्भ रह जाता है । मेरा कहा हुआ यह सत्य है ऐसा ग्रन्थकार कल्याण कहते है ।

जो पुरुप धातु-नष्ट हो जाने से शुक्रहीन हो गया है उसकी धातुवृद्धि या नपु सकत्व निवारण के अनेक उपाय तृतीय पटल मे निगदित हैं। यथा—

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रस शर्करयापिवेत् ।
एतत्प्रयोगात्सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधि. ।।३प०।४९।।

भैपज्यरत्नावली में निम्न पाठान्तर मिलता है :—

"वृद्धशाल्मलिमूलस्य रस शर्करया समम् ।
प्रयोगादस्य सप्ताहाज्जायते रेतसोऽम्बुधिः ।।

पुराने शाल्मलि वृक्षो की जडो का रस सप्ताहपर्यन्त शक्कर के साथ पान करने से वहुत अधिक धातुवृद्धि हो जाती हैं ।

वृद्ध पुरुप भी निम्नप्रकार से ६ मास तक अपूपादि के सेवन करने से युवा हो जाता है तथा एक मास सेवन करने से शुक्रवृद्धि हो जाती है । यथा —

माषा यवाश्वदंष्ट्रा वा वानरी शतमूलिका ।।३प०।५।।

पयसा पेपयेत्तेन पक्वयेत् घृतपूपकम् ।
दिनान्ते भक्षयेदेक ततो क्षीर पिबेन्नरः ॥६॥

षण्मासाभ्यन्तरे चैव वृद्धोऽपि तरुणायते ।
मासमेकप्रयोगेण शुक्रवृद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥३प०।७॥

माप, यव, गोखरू, वानरी (कौच), शतमूलिका (शतावर) आदि को दूध के साथ पीसकर घी मे तलकर एक अपूप साय नियमित रूप से खायें और तदनन्तर दूध पीवे । इस प्रकार ६ मास नियमित प्रयोग से वृद्ध आदमी तरुण के समान हो जाना है । यदि एक माह तक ही इस प्रयोग को चालू रखे तो शुक्र मे वृद्धि निश्चित हो जाती है ।

चतुर्थ पटल मे गर्भाधान एव कालरुद्रस्नान आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

सद्गुणो से समन्वित सन्तति समुत्पन्न करने के लिए पति-पत्नि के विचार पवित्र होने चाहिये । इस विषय मे कामसूत्रकार वात्स्यायन ने भी जोर दिया है । ग्रन्थकार ने सुश्रुत के शरीर सस्थान अध्याय २२ से ४६ को इस प्रकरण मे निम्नरूपेण दोहरा दिया है ।

"आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभि. समन्वितौ ।
स्त्रीपुंसौ समुपेयाता तत. (यो·) पुत्रोऽपि तादृशः ॥४प०॥४॥

पञ्चम पटल मे गर्भस्थित वालक की रक्षा के लिए वलि का विधान भी आवश्यक वतलाया गया है । यथा —

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे तु प्रथमे वलि. ।
प्रजापति समुद्दिश्य देयो मन्त्रेण मन्त्रिणा ॥५ प०॥२॥

इस श्लोक के पूर्वार्द्ध मे प्रतिलिपिकर्ता के प्रमादवश मन्त्र अपूर्ण रह गया है व श्लोक के उत्तरार्द्ध मे औषध-सेवन विधि आ गई है । मत्र का शुद्ध पाठ इस प्रकार है—

एह्यहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजापतेः प्रजापते ।
वालस्य गर्भरक्षार्थं रक्ष रक्ष कुमारकम् ॥वन्ध्या जीवने।५।२१॥

गर्भरक्षा के लिए औषधिका सेवन करना भी आवश्यक माना गया है। यथा —

यदि चेत्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना।
नीलोत्पल सनाल च शृंगाटककसेरुकम् ॥५ प०।६॥

भैषज्यरत्नावली मे इस प्रकार पाठान्तर मिलता है—

"प्रथमे मासि गर्भे तु यदा भवति वेदना।
चन्दनं शतपुष्पा च शर्करा मदयन्तिका ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा
पाययेत् पयसाऽऽलोड्य गर्भिणी मात्रया भिषक् ॥गर्भिणी रोग-चिकित्सा १-४॥

यदि गर्भिणी स्त्री को प्रथम मास मे गर्भ मे वेदना हो तो सनाल नीलकमल कसेरुक, शृंगाटक (सिंगाडा) को शीतल जल से पीसकर दूध के साथ पान कराने से गर्भ पतित नही होता है और शूल भी नष्ट हो जाता है ।

अपस्मार (मृगी का) उपचार

कूष्माण्डकरस दत्वा मधुक परिपेषयेत्।
अपस्मारविनाशाय तत्पिवेत्सप्तवासरम् ॥१३प०॥६७॥

महुआ को कूष्माण्डरस मे पीसकर मृगीरोग निवारणार्थ एक सप्ताह तक पीना चाहिए।

शीतलादोष निवारणार्थ—

शीतलेन जलेनैव चचर्या (चचर्या) च समन्वितम्।
हरिद्रां य. पिवेत्तस्य न दोष. शीतला भवेत् ॥१३ प०॥१०४॥

चचरी से मिश्रित हल्दी को शीतल जल के साथ जो पीता है उसे शीतला-दोष नही होता है। भावप्रकाश मे पाठान्तर इस प्रकार है —

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यड् निम्बाक्षवीजसहितां रजनी पिबन्ति।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिका विधारा ॥

इस ग्रन्थ मे इसी पटल के श्लोक १०६ का पाठ इस प्रकार है—

चन्दन वासको मुस्त गुडूची द्राक्षयासह,
एषा सितकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनम् ॥

किन्तु, भावप्रकाश मे यही पाठ इस प्रकार है—

"चन्दक वासको मुस्त गुडूची द्राक्षयासह ।
एषा शीतकषायस्तु शीतलोज्वर नाशन. ॥"

हल्दी के साथ इस योग मे चर्चरी के स्थान पर नीम व बेहडो के बीजो का उल्लेख है ।

नाना प्रयोग नामक इस पटल मे नेत्र-नासिका-शिर आदि रोगो के निवारणोपाय के अनन्तर सर्पादि के काटने से जनित विष के प्रशमन के उपाय बतलाये गये हैं ।

नेत्ररोगोपचार —

धत्तूरफलकर्पूरे निघृष्यमधुनाऽजयेत् ।
नेत्ररोगा. प्रणश्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव ॥१४। ॥६॥

कान के दर्द का उपचार :—

अर्कस्य पत्र परिणामपीत तैलेनलिप्त शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्यतोय श्रवणे निषिक्त निहन्ति शूल बहुवेदना च ॥१४।प०॥६॥

पाठान्तरेण :—

अर्कस्य पत्र परिणामपीतमाज्येन लिप्त शिखिनाऽवतप्तम् ।
आपीड्यतोय श्रवणे निषक्त निहन्ति शूल बहुवेदना च ॥भै।कर्म॥१०॥

परिपक्व पीत अर्क (आकडा) के पत्ते को तेल लगाकर आग मे सेक कर तथा उस पत्ते को दबा कर उसका रस कान मे डालने से कान की बहुवेदना नष्ट हो जाती है ।

कीटभक्षितदन्तोपचार :—

मन्दोष्ण धारयेच्छुद्ध हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ।
तेन प्रशाम्यत्याशु कृमि-दष्टो महागद ॥१४ प०।१२॥

शुद्ध हीग को थोडा उष्ण कर दशित स्थान मे डालने से कृमिदश जल्दी ही नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार ग्रन्थकार ने 'वालतंत्र' नामक आकार मे, लघीयसी किन्तु, उपयोगी दृष्टि से इस महीयसी रचना मे विविध प्रयोगो द्वारा "कौमारभृत्य" विषय का सम्यक् सम्पादन प्रतिपादन किया है। इस एक ही ग्रन्थ से एतद्-विषयक अनेक उपयोगी विषयो की जानकारी मिल जाती है। अत. यह आयुर्वेद-प्रियजनो के लिए उपकारक है।

"वालतन्त्र" का प्रतिष्ठान हेतु सम्पादन कर कविराज प० विष्णुदत्तजी पुरोहित ने एक उपयोगी और महत्वपूर्ण कार्य किया है। तदर्थ समस्त आयुर्वेद-जगत् और प्रतिष्ठान इनके प्रति आभारी है।

हस्तलिखित ग्रन्थ-सग्रहानुभाग, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान के प्रभारी श्री रमानन्द सारस्वत और गवेषकद्वय श्री ठाकुरदत्त जोशी तथा श्री ओम-प्रकाश शर्मा एव प्रतिलिपि-कर्त्ता श्री गिरिवरवल्लभ दाधीच ने इस महत्वपूर्ण कार्य मे यथेष्ट सहयोग दिया है, अतएव इन्हे अनेक धन्यवाद।

डॉ० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर
५ जनवरी, १९७३ ई०

सम्पादकीय भूमिका

श्रीकल्याणमिश्रकृत वालतत्र, एक आयुर्विज्ञानानुमोदित तांत्रिक ग्रथ है। सत्रहवी शताब्दी मे यह लिखा गया था। भारत का वह समय परतन्त्रता का था, तत्कालीन प्रशासक भारत एव भारतीय सस्कृति के घोर विरोधी थे। सस्कृति-मूलक साहित्य को नष्ट करना उनकी दिनचर्या वन गई थी. अपने इसी उन्माद मे उन्होने छल से, वल से और कौशल से जितना भी वन सका, भारतीय साहित्य को ढू ढ-ढू ढ कर हमामो का ईंधन वनाया।

ऐसे ही समय मे—लुकाछिपी के जमाने में—भारतीयो ने अपने प्राणो से भी अधिक अपने साहित्य की रक्षा की। साहित्य की सुरक्षा उत्तराधिकारियो पर छोड, वे महाप्रस्थान के रास्ते के पथिक वने। ऐसी परिस्थिति भारत में ग्यारहवी सदी से प्रारम्भ हो चली थी। इन परिस्थितियो का पूर्व ज्ञान भारतीयो को वहुत पहले ही हो गया था। यही कारण था कि हमारी सस्कृति में मत्र, तत्र और यत्रो का समावेश किया गया। यो मत्र तो भारत के आदि वा अनादिकाल से विद्यमान थे। पराधीनता-काल के परिचय का पूर्वाभास भारतीय नाथसप्रदाय के आचार्यो एव जैनागमी आचार्यों को सभव है, हो चला था। यही कारण था कि उन्होने तत्रो एव यत्रो का पुष्कल मात्रा मे प्रचार किया। पर वे 'अधिकारी' का महत्त्व अपने मन-मस्तिष्क मे 'सर्वोपरि' माना करते थे, अत: जव तक उन्हे कोई योग्य अधिकारी नही मिलता तव तक वे तत्र और यत्र की गोपनीय तत्त्वो मे ही गणना करते थे और योग्य अधिकारी को भी वे गोपनीयता का परामर्श देते थे। यही कारण है कि सत्रहवी शताब्दी का ग्रथ अठारहवी शताब्दी मे लिपिकार के हाथ लगा। साराशत. तत्र और यत्र का साहित्य सूत्रात्मक ही हुआ करता था अर्थात् थोडे मे जितना चाहे उतना या जितना आवश्यक हो उतना भर देना और ऊपर से याथातथ्य प्रतीति न ` पाये, यही अन्तर्गोप्य उद्देश्य रहता था। उसी शृखला की एक कडी हमारा 'वालतंत्र' है।

आयुर्वेदीय वाङ्मय के अनुसार यदि देखा जाय तो 'वालतत्र' एक प्रकार से आयुर्वेदीय 'कौमारभृत्य' ही है। प्रस्तुत 'वालतत्र' कौमारभृत्य का ही एक मौलिक रूप है। कौमारभृत्य मे 'ग्रह-गृहीत' वालको को दु साध्य, कृच्छ्र-साध्य तथा असाध्य ही माना है। सम्भवत इसी उलझन को सुलझाने हेतु श्रीकल्याण-

मिश्र ने इसे कुछ २ मौलिक रूप दिया हो ? ऐसा सम्भाव्य है। पूरे ग्रथ को देखने के वाद पाठक पर इसकी मौलिकता की मुद्रा अकित हो ही जाती है।

सम्प्रति भारतीय वातावरण को 'परिवार-नियोजन' की करवट लेने की प्रेरणा पाश्चात्याभिभूत प्रशासन ने दी है। अतः पुरातन भारतीय साहित्य मे 'परिवार-नियोजन' को ढूँढने की प्रवृत्ति का उद्भव हुआ है। उसी प्रवृत्ति की शृखला मे हमे 'वालतत्र' का अध्ययन करने पर यह स्वीकार करना होगा कि 'बालतत्र' मे सकटकालीन परिवार-नियोजन का आभास तत्कालीन सास्कृतिक वातावरण के अनुरूप मिलता है। हमारा आज का निष्कर्ष परिवार मे तीन वच्चो के अस्तित्व को स्वीकार करता है और 'बालतत्रकार' भी तीन बच्चो के अस्तित्व को ही गुम्फित करता है, मात्र वातावरण की भिन्नता अवश्य है। आज के वातावरण मे कृत्रिमता का अभिन्न सहयोग है, जब कि बालतत्र-काल मे सयमका एकान्त समर्थन था एव उसी पृष्ठभूमि मे 'परिवार-नियोजन' का अस्पष्ट गुफन है।

आज के वातावरण मे जिसे हम 'परिवार-नियोजन' कहते है उसी को तत्कालीन समय मे 'इच्छासतति' की सज्ञा से अभिहित किया गया था। अवश्य हो 'कृत्रिमता' उस समय मे अपने अस्तित्त्व मे नही थी। किन्तु, आयुर्वेद मे 'नियोजन' व 'योजन' स्वेच्छाधीन करने की योजनाओ का यत्रतत्र उल्लेख है। प्रस्तुत 'वालतत्र' एक संग्रह ग्रथ है जैसा कि ग्रथकार ने मगलाचरणोत्तर हो स्वीकार किया है—

"प्रयोगसारप्रमुखागमेषु प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन् ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ॥२'।

आयुर्वेदमतानुसार नारी मे आठ दोष माने हैं और एक दोष अर्थात् नौवा दोप पुरुष का माना है। इन दोषो की सफाई आयुर्वेद ने बतलाई है। उस शुद्धीकरण का अनुशीलन करने पर पता चल सकता है कि आयुर्वेद ने 'इच्छा-सन्तति' ही अपना उद्देश्य माना है। अर्थात् योनि का शुद्धीकरण एव वीर्य का स्थिरीकरण ही तो 'इच्छा-सन्तति' का मूल कारण है। इसीका उल्लेख ग्रथकार ने किया है। अवश्य ही ऊपरी आवरण गर्भोत्पत्ति का ही है, फिर भी हम 'नियोजन' के सभावनापरक रूप मे इस ग्रथ को मान सकते हैं। उदाहरणार्थ नारी के लिये निर्देश देते हुए ग्रथकार ने उल्लेख किया है—

"आरनालपरिपोषित त्र्यह वारणपुष्पसहित तु कामिनी ।
सत्पुराणगुणमुष्ट (ष्टि)-सेविनी नैव गर्भ धरते कदाचन ॥२प०॥३३॥"

और इसी तरह पुरुष के लिये भी ग्रन्थकार ने निर्देश दिया है कि—

"काञ्चनस्य फलमूलदलाना पूगचूर्णसहितेन रसेन ।
लिंगलेपमसकृत्प्रहरार्द्धं विन्दुवेगधरणाय निवद्धम् ॥३प०॥ ५८ ॥

इसी तरह के लुके-छुपे प्रयोग आयुर्वेद मे मिलते हैं, जो प्राकृत है, आज की तरह अप्राकृत उन्हे नही कहा जाता। प्राकृत उपाय जहा देह को हानि या कष्ट नही पहुचाते, प्रत्युत देह की स्वस्थता मे भी वृद्धि करते हैं। किन्तु, आज के अप्राकृत योग देह को कष्ट भी पहुँचाते हैं एव देहस्थ धातुओ को दूषित कर देह को सदा-सर्वदा के लिये रोगायतन वना देते हैं जिसमे हमारा जीवन क्लान्त एव दु खी वन जाता है, भार वन जाता है जो उठाये मुश्किल से उठता है।

पुरातन काल मे एव वर्त्तमान मे भी मानव का एक आदर्श रहता था एव है। उसी आदर्श के अनुसार उसकी भावनाएँ वना करती थी। मानव अपनी उपयोगिता दूसरो के लिये मानकर ससार मे जीने की इच्छा रखता है, नही कि अपनी उपयोगिता वह अपने स्वय के लिये मानकर जीये। अवश्य दोनो ही तरह के मानव पाये जाते हैं पर दोनो में श्रेष्ठ 'परार्थजीवी' ही माने गये एव माने जाते रहे हैं। परन्तु, आज पाश्चात्यसस्कृत्यनुरागी भयकर रूप मे 'स्वार्थ-जीविता' का उपदेश वडी उदारता से देते जा रहे हैं। 'परार्थजीवी' गरीव अवश्य होते हैं पर वे गरीबी का अनुभव नही करते, कारण वे मूलतः अपरिग्रही होते है। किन्तु, उनमे भी दुर्वलमतियो की गरीवी को लक्ष्य कर वार २ उन्हे कचोटने पर जव उनका अपरिग्रह गरीवी के रूप मे उभार लेता है तब हमारे दिमाग मे पाश्चात्य उपदेश—'स्वार्थ जीविता' घर करने लग जाता है और हम उतावले होकर अपने आप के लिये जीने की भावना वनाने लगते है और कृत्रिमसाधनो द्वारा प्राकृत सुख की लालसा करते है जो कही मिल जाता है और कही हमे ही आत्मसात् कर लेता है।

श्रीकल्याणमिश्र ने वालतत्र को जिन चौदह पटलो मे सम्पूर्ण किया है, उन चौदह पटलो के नाम इस प्रकार हैं—१ षोडश वध्या-प्रतीकार, २ साधारण वध्यौषध, ३. पुरुषवीर्यवृद्धि, ४ गर्भाधानकाल, ५ गर्भ-रक्षा, ६ सुख-प्रसवोपाय-

कथन, ७, दिवसगृहीतबालग्रहहर, ८ मासेषु गृहीतबालग्रहहर, ९. वर्षगृहीत-बालग्रहहर, १०. दिन-मास-वर्षेषु वालग्रहोपाय, ११ साधारणबालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तन-स्नान-धूपादिविधान, १२ ज्वरहरणोपाय, १३ शीतला-चिकित्सा और १४. नानाप्रयोगकथननामक चतुदश पटल है ।

'वालतत्र' मे विशाल चार पटलो द्वारा 'बालग्रह' पर विशेष प्रकाश डाला गया है । ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रथकार का मूल विषय ही यही है । 'वालग्रह' सोलहवी शताब्दी मे अपने चरम उत्कर्ष पर विश्राम कर रहा था, कारण ७वी शताब्दी मे नाथ-सस्कृति मे ही इसमे विशेष उभार आया एव पन्द्रहवी शताब्दी मे इसका पूर्ण उत्कर्ष हो चुका था, किन्तु सोलहवी शताब्दी मे आज की तरह परिवार-नियोजन की भावना तत्कालीन समाज मे प्रशासको की दमन-नीति के कारण जागृत हुई थी और सभवत उसी भावना के आधार पर ग्रन्थकार ने 'तीन सतान मात्र' के लक्ष्य को लेकर 'बालतत्र' का प्रणयन किया । वह काल भारतीयो का ऐसे ही कार्यक्रम के आधार पर चला करता था एव जन-मानस की ऐसी ही विश्वासता उस काल मे थी ।

हमारे शास्त्रो की मान्यता है कि "तृतीये मासि सर्वेन्द्रियाणि सर्वाङ्गा-वयवाश्च यौगपद्येनाऽभिनिर्वर्त्तन्ते ।" (च. शा. अ ४-११). और भी—"तस्य यत्कालमेवेन्द्रियाणि सन्तिष्ठन्ते, तत्कालमेव चेतसि वेदनानिर्वन्ध प्राप्नोति, तस्मात्तदा-प्रभृति गर्भः स्पन्दते, प्रार्थयते च जन्मान्तरानुभूत यत्किञ्चित् तद् द्वैहृदय्यमाचक्षते वृद्धाः ।" (च शा. अ ४-१५) और सुश्रुत मे—"सर्वाङ्ग-प्रत्यङ्गविभाग· प्रव्यक्ततरो भवति, गर्भ-हृदयप्रव्यक्तीभावाच्चेतनाधातुरभिव्यक्तो भवति, कस्मात् ? तत् स्थानत्वात्, तस्माद् गर्भश्चतुर्थे मास्यभिप्रायमिन्द्रियार्थेषु करोति, द्वि-हृदयां च नारी दौहृदिनीमाचक्षते ।" (सु. शा. अ ३-१८) ।

अर्थात् जीव के मानसिक व्यापारो का प्रारभ चौथे महीने से हो जाता है, उसका हृदय धडकना प्रारभ होता है और चूकि वह चेतना-स्थान है, इसलिये चेतना-धातु अधिक प्रमाण मे व्यक्त होता है, गर्भ इन्द्रियार्थों की इच्छा करता है । इस अवस्था मे माता मे दो हृदय होते है, इसीलिये उसे 'दौहृदिनी' कहते है । गर्भ मे इन्द्रियो के उत्पन्न होते ही उसके चित्त मे सुख और दु.ख के भाव उत्पन्न होने लगते हैं । इन वाक्यो से ज्ञात होता है कि गर्भावस्था के काल से ही मनुष्य के मानसिक एव शारीरिक व्यापारो का

प्रारभ होता है । मन के विकास से ही उसकी गुप्तशक्तियो का आविर्भाव हुआ करता है । जैसे बीज के भीतर सूक्ष्मरूप से वृक्ष रहता है और बीज से अकुर निकल कर वृक्षरूप में परिणत होता है उसी प्रकार गर्भावस्था मे मनुष्य के चित्त मे गुप्तरूप मे स्थित उसकी शक्तिया प्रतिदिन विकसित होती होती अन्त मे वे सम्पूर्ण चित्त के रूप मे परिणत हो जाती है ।

"सत्ववैशेष्यकराणि पुनस्तेषा प्राणिनां मातापितृसत्वान्यन्तर्वत्न्याः श्रुतयश्चाभीक्ष्णं स्वोचित च कर्म सत्वविशेषाभ्यासश्चे ति ।" (च०शा०अ० ८/१६)

टीका—"मातापितृसत्वानीति मातापित्रनुकारेण सत्वानि प्राय. प्रभावाद् एव भवन्ति । अन्तर्वत्नी गर्भिणी । श्रुतयश्चाभीक्ष्णमिति । यथा गर्भिणी गीतादि शृणोति, तथा सत्वमपत्यं जनयति । स्वोचितं च कर्मेति गर्भेणोपार्जित कर्म स्वबलानुरूप सत्व जनयति । सत्व विशेषाभ्यासश्चे ति यथा-विध सत्व पुरुषोऽभ्यस्यति जन्मान्तरे, तत् सत्व एव जायते" । वचन हि—

"जन्म-जन्म-यदभ्यस्त दानमध्ययन तपः ।
तेनैवाभ्यासयोगेन तच्चैवाभ्यस्यते पुन. ॥" (चक्रपाणिदत्त) ।

यो अनुमान लगा सकते हैं कि (क) लिङ्ग-देह के साथ आने वाला आत्मा नये कललात्मक स्थूलदेह का आश्रय लेता है; (ख) इस नये देह पर माता पिता के स्थूलदेह के सघटन (रचना) का प्रभाव जिस तरह होता है; (ग) उसी प्रकार माता-पिता के मानसिक सस्कारो का प्रभाव भी गर्भ के मन पर होता है । यहा यह भी याद रखना होगा कि हमारे विचार-प्राबल्य का प्रभाव, स्रोतोहीन ग्रथियो के स्रावो द्वारा हमारे रुधिर के रासायनिक सघटन पर होता है। इसलिये यह निःसकोच मान सकते हैं कि यही रुधिर-प्रवाह जन्म के पहिले गर्भ पर प्रभाव डालता है एव गर्भ का अपना कर्म-बल अर्थात् इस स्थिति मे धर्माधर्मरूप सस्कार बल—यह उसके पूर्वजन्म मे मन पर जैसे सस्कार उत्पन्न होते हैं उसी के अनुरूप होता है "येनास्य खलु प्रयतः भूयिष्ठम्, तेन द्वितीयाया वा जातौ सप्रयोगो भवति ।" (च० शा० अ० ३/१९)

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के साथ अत्र हम बालको को ग्रह-बाधा क्यो होती है ? इस पर विचार करें तो, सुश्रुत का कथन इस प्रकार है—

"धात्रीमात्रो. प्राक्प्रदिष्टापचारान्, शौचभ्रष्टान्मंगलाचारहीनान् ॥
त्रस्तान हृष्टास्तर्जितान् क्रन्दितान्वा, पूजाहेतोर्हिस्युरेते कुमारान् ॥"

अर्थात् धाय व माता के दुष्ट आचरणो से युक्त, मल--मूत्र से भ्रष्ट, मगलाचार से हीन, त्रस्त, दृष्ट, पीटे गये तथा रोते हुए बालको को ये ग्रह पूजा के हेतु मार डालते हैं। ग्रह-बाधा के इतिहास की ओर यह सङ्केत सुश्रुत-सहिता के उत्तर-तंत्र मे पाया जाता है—"कुमार स्कद की रक्षा एवं मन-बहलाव के लिये देवाधिदेव महादेव ने इन ग्रहो की सृष्टि की थी । जब कुमार स्कददेव सेनानी के पद पर नियुक्त हो गये तब देवाधिदेव महादेव ने ग्रहो को आदेश दिया कि—"तुम्हारी सुन्दरवृत्ति बालको मे होगी, जिन कुलो मे देवता, पितृ, ब्राह्मण, साधु, गुरु, अतिथि का सत्कार नही होता है, जिस कुल से आचार और पवित्रता जाती रहती है, जो पराये पाक को खाने वाले हैं, जो बलिदान व भीख नही देते, टूटे-फूटे काँसी के पात्रो मे भोजन करते है उन घरो के बालकों को तुम निशक होकर ग्रहण कर लो, वहा तुम्हारी वृत्ति एव पूजा दोनो ही होगी।" इसीलिये ग्रह-गृहीत बालक दुश्चिकित्स्य माने गये हैं ।

उपर्युक्त प्राचीन इतिहास को देखते हुए हमे एक बात का ध्यान रखन चाहिये--भारत कभी भी धर्म-हीन नही रहा, धर्म की परिभाषा उसने कर्त्तव्य से की है। कर्त्तव्य के पालन पर जितना जोर भारत मे दिया गया उतना कही पर नही दिया गया। इसी कारण विश्व मे इसे श्रेष्ठत्त्व प्राप्त हुआ। एक प्रकार से धर्म एव कर्त्तव्य पर्यायवाची शब्द बन गये; अत: कालान्तर मे कही धर्म को कर्त्तव्य एव कर्त्तव्य को धर्म लिखा जाने लगा जब कि अर्थ दोनो का एक ही था। पारतन्त्र्य-युग मे धर्म को सम्प्रदाय मान लिया गया और वही प्रवृत्ति आज धर्म-निरपेक्षता को घसीट लाई जो हमारे मौलिक दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत है। एक उदाहरण ले—हमारा कर्त्तव्य (धर्म) था कि हम प्रत्यक्षत. माँ को देवता के समान पूजें, इसी तरह पिता, अतिथि तथा गुरुजन को भी । अब इसमे क्या बुरा है? पर विदेशी शासको ने इसके प्रति नाक-भो सिकोड़ा । कहने का अभिप्राय यही है कि आज का युग पूर्व युग से परिवर्त्तित है। पहिले की बाते हमारे दिमाग मे से योजनापूर्वक निकाली गई है जब कि निकालने वालो ने उस पर शोध की एव सत्याश को प्राप्त कर नये साचे मे उसी को ढाला—जैसे ग्रह-गृहीत पर तो नाक-भो सिकोडे परन्तु, कीटाणुवाद के रूप मे उसे ग्रहण किया । अत. आज भारतीयो मे भारतीयता के प्रति अनुराग की प्रवृत्ति को जगाना ही साहित्य का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिये। अस्तु ।

श्रीकल्याणमिश्र ने काश्यप-संहिता, सुश्रुत-संहिता, चरक-संहिता आदि समस्त आयुर्वेद वाङ्मय एवं आगम-ग्रंथों का आलोडन कर 'बालतंत्र' की रचना की है। इन्होंने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से कौमारभृत्य का अवगाहन किया एवं कहीं कुछ बढ़ाया और कहीं कुछ घटाया भी। प्रस्तुत 'बालतंत्र' के ग्रहों में—१ योगिनी, सुनंदना, पूतना, मुखमण्डलिका, बिडालिका, द्वारिका, कालिका, कामिनी, मदना, रेवती, पूतनान्विता, पूतना अद्भुताख्या, भद्रकाली, ताराश्रीयोगिनी, योगिनी, पूतनाकुमारी आदि वर्ष, मास, दिवसों (तीनों में) में बालक को दुःखी करती हैं। इसी तरह—नंदिनी, सनंदना, घंटाली, कटकोली, हुंकारी, ईषद्धाई-पट्कारी, हिमिका, भीषणी, मेना और रोदना प्रारंभ के १० दिनों में बालक को दुःखी करती हैं। और कुमारी योगिनी, मुकुटा ग्रही, गोमुखी, पिंगला, वडवा, पद्मा पूतना अर्जिका, कुंभकर्णिका, तापसी, सुग्रही और बालिका ये जन्म से लेकर बारह मासों तक बालक को दुःखी करती है। इसी तरह—नन्दिनी, रोदनी, धनदा, चंचला नर्तकी, यमुना, कुमारिका, कलहंसा, देवदूती, बा (का) लिका, यक्षिणी स्वच्छंदा कपी और दुर्जया जन्म से लेकर १६ वर्षों तक बालक को खतरे से खाली नहीं रखती।

अन्यान्य आयुर्वेदिक संहिता-ग्रंथों में इतना विशद विवेचन कहीं नहीं मिलता। इसी तरह चिकित्सा में भी श्रीकल्याणमिश्र ने बड़ा ही सौकर्य प्रदर्शित किया है जो पढ़ते ही बनता है। श्रीमिश्र तत्कालीन समय के आधुनिको-सुधारकों में से अन्यतम सुधारक थे। उनका लक्ष्य प्रचलित परम्परा में सुधार का था। वे अवश्य सीमित संतति के समर्थक थे, परन्तु वे सन्तति पोषण के एकान्ततः सर्वाग्रही थे। वे समय के जहां प्रबल पृष्ठपोषक थे वहां दुर्दमनीयावस्था में प्रयत्नों का भी महत्त्व स्वीकार करते थे। इन सारी बातों को देखते हुए कहा जा सकता है कि श्रीकल्याणमिश्र १७वीं शती के परिवार-नियोजकों में अपनी भांति के एक ही थे। इसलिये अपने ग्रंथ को 'संग्रहग्रंथ' कहते हुए भी उन्होंने इसे मौलिकता प्रदान की है जो कि आज के युग में सर्वथा उपादेय है।

उपर्य्युक्त विवेचन से हमें ज्ञात होता है कि श्रीकल्याणमिश्र, आयुर्वेद एवं आगम-ग्रंथों के तत्कालीन सारग्राही विद्वानों में से एक थे। कारण, चिकित्सा आयुर्वेदीय ग्रंथों से एवं मन्त्रों का निदेशन आपने आगम-ग्रंथों का सूक्ष्म परिशीलन कर, किया है। 'तन्त्रसार' आदि आगम-ग्रंथों में भी इनका उल्लेख पाया जाता है। चिकित्साधीन द्रव्य प्राप्त करने पड़ते हैं, पर मन्त्रों द्वारा तो

चिकित्सक पूर्ण आत्मावलम्बी रहता है जिसकी कि आज के कृत्रिम युग में एकान्त आवश्यकता है ।

भारतीय साहित्यकार अनादि-काल से स्वात्म-प्रकाशन से दूर ही रहा करते थे। वे मात्र पते की बात किया करते थे। कारण, सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप से ज्ञान के भण्डार को छोटे से स्थल मे निवेशित करना ही वे अपना प्रथम कर्त्तव्य मानते थे, वहा स्वात्म-प्रकाशन की तो बात ही नही उठती ? आज के युग मे ग्रथकर्त्ता के परिचय की भूख पाठको मे और जनता मे प्रबलतर होती जा रही है। इसी सन्दर्भ मे हमने श्रीकल्याण मिश्र के ऐतिहासिक परिचय की शोध की तो ज्ञात हुआ कि बालतन्त्रकार श्रीकल्याणमिश्र अहिच्छत्रान्वयी रामदास के पौत्र एव महर्षि महीधर के पुत्र थे जैसा कि प्रस्तुत ग्रन्थ के ग्यारहवे एव चौदहवे पटल म उद्धृत पुष्पिका से स्पष्ट होता है—

अहिच्छत्रान्वये जात पण्डितैकशिरोमणि ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदास सतां प्रियः ॥१४५० ॥२७॥

विद्वज्जनाह्लादकरो मनस्वी महीधरः सर्वजनाभिवन्द्य ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृङ्गस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ॥२८॥

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रन्थवरान् विलोक्य ।
परोपकाराय बबन्ध तन्त्र सतां समालोकनयोग्यमेतत् ॥२९॥

युगवेदरसाका (सैक) समिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेद लिलेख च शिवालये ॥३०॥

इसी बात का सङ्केत श्रीमहीधर द्वारा विरचित 'मन्त्रमहोदधि' नामक ग्रन्थ के अन्तिम पचीसवे तरङ्ग मे उल्लिखित निम्न पद्यो मे मिलता है—

"अहिच्छत्र द्विजच्छत्र वत्सगोत्रसमुद्भव ।
आसीद्रत्नाकरो नाम विद्वान् ख्यातो धरातले ॥१२१॥

तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत् ।
महीधरस्तदुत्पन्नः ससारासारतां विदन् ॥१२२॥

निजदेश परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम् ।
सेवमानो नरहरिस्तत्र ग्रन्थमिम व्यधात् ॥१२३॥

कल्याणाभिधपुत्रेण तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ।
अनेकानागमग्रन्थान् विलोकितमुनीश्वरैः ॥१२३॥

एकग्रन्थस्थित सर्वं मन्त्राणां सारमिप्सुभि ।
सम्प्रार्थित. स्वमत्यासौ नाम्ना मन्त्रमहोदधिः ॥१२५॥

अब्दे विक्रमतो जाते वेदबाणनृपैर्मिते ।
ज्येष्ठाष्टम्यां शिवस्याग्रे पूर्णो मन्त्रमहोदधिः ॥१३२॥

इस प्रकार हमारे श्रीकल्याण मिश्र अहिच्छत्र-द्विजच्छत्रके वत्सगोत्रिय श्रीरत्नकार के पुत्र रामभक्त 'फनूभट्ट' के पुत्र श्री महीधर से उत्पन्न हुए । वे अपने पिता के साथ अपने देश को छोड़ कर वाराणसीपुरी पधारे । वहा आचार्य महीधर ने श्रीनरहरि की सेवा मे रहते हुए 'कल्याण' नामक अपने पुत्र तथा द्विजसत्तमो के साथ अनेकानेक आगमग्रन्थो क निष्णात मुनीश्वरो के वचनो को एकत्र कर सारतत्वबोधी विद्वानो की इच्छा पूरी करनेहेतु एक ही ग्रथ मन्त्र-महोदधि' की रचना की । अतः हमारे ग्रथकार श्रीकल्याण मिश्र भी 'ऋषयो-मन्त्रद्रष्टारः' की ही परम्परा के एक त्रिकालज्ञ ऋषि थे इसमे हमे कोई सशय नही है ।

'मन्त्रमहोदधि' के उपर्य्युद्धृत पद्यों से जहाँ इस बात की सम्पुष्टि होनी है कि श्रीकल्याण श्रीमहीधर के ही पुत्र थे वहाँ 'फनूभट्टाभिधोऽभवत्' महीधर-स्तदुत्पन्न.' इस पद्याश से यह भी कुछ भ्रम हो सकता है कि श्रीकल्याण मन्त्र-महोदधिकार श्रीमहीधर के ही पुत्र थे किंवा अन्य महीधर के । किन्तु, इस भ्रम का समाधान 'वालतन्त्र' एव 'मन्त्रमहोदधि' के ही पद्यो से स्वत हो जाता है । जैसा कि निम्न विवेचन से ज्ञात होगा—

१. श्रीकल्याण स्वय को अहिच्छत्रान्वयी रामदास का पौत्र मानते हैं[1] और श्रीमहीधर भी अपने को अहिच्छत्रान्वयी रामभक्त 'फनू भट्ट' का पुत्र[2] ।

२. श्रीकल्याण अपने पिता श्रीमहीधर को भगवान् श्रीलक्ष्मीनृसिंह का

---

१. 'अहिच्छत्रान्वये जात... ,'रामदासः सता प्रियः' आदि । (वा. त.)

२. 'अहिच्छत्रं द्विजच्छत्र - .. ...तत्तनूजो रामभक्तः फनूभट्टाभिधोऽभवत्, महीधर स्तदुत्पन्न.' । (म. म.)

अनन्य भक्त घोषित करते है[1] और श्रीमहीधर भी स्वय को श्रीलक्ष्मीनृसिंह का अनन्य उपासक मानते है[2]।

३ श्रीमहीधर अपने साथ अपने पुत्र कल्याण को वाराणसी ले जाने का सङ्केत करते है[3] और श्रीकल्याण भी प्रस्तुत बालतन्त्र का रचना-स्थान वाराणसी को बतलाते है[4]।

उक्त विवेचन से सुस्पष्टत: यह सम्पुष्टि हो जाती है कि श्रीकल्याण मन्त्रमहोदधिकार श्रीमहीधर के ही पुत्र थे और उन्होने बालतन्त्र मे अपने पितामह के प्रसिद्ध नाम 'रामदास' का ही उल्लेख किया; क्योंकि हमारे अभिमत मे इसका कारण यही हो सकता है कि 'फनूभट्ट' उस समय मे भगवान् श्रीरामचन्द्र के अनन्यभक्त होने के कारण 'रामदास' या 'रामभक्त' के नाम से प्रसिद्धि पाचुके थे।

---

१. 'महीधरः सर्वजनाभिवन्द्य', लक्ष्मीनृसिंहाङ्घ्रिसरोजभृङ्गः'। (बा. तं)

२. 'प्रणम्य लक्ष्मीनृहरिं महागणपतिं गुरुम्।
तन्त्राण्यनेकानालोक्य वक्ष्ये मन्त्रमहोदधिम् ॥१॥ (मन्त्रमहोदधि–तरङ्ग—१)
नरसिंहो महादेवो महादेवार्त्तिनाशनः।
मुदे परां महालक्ष्म्या देवावरनतोऽस्तु मे ॥१२८॥ (म. म. तरङ्ग—२५)
नृसिंह उत्सङ्गसमुद्रजो मां समुद्रजद्वीपगृहे निषण्णः।
समुद्रजो हीनमति. सदाऽव्यात् समुद्रभक्ताखिलसिद्धिदायी। ॥१२९॥"
राजा लक्ष्मीनृसिंहो जयति सुखकरं श्रीनृसिंहं विजेयं,
दैत्याधीशा महान्तो वसत नृहरिणा श्रीनृसिंहाय नौमि।
सेव्यो लक्ष्मीनृसिंहादपर इह न हि श्रीनृसिंहस्य पादौ,
सेवे लक्ष्मीनृसिंह वसतु मम मन' श्रीनृसिंहाच्च भक्तम् ॥१३०॥ („)

३. 'निजदेशं परित्यज्य गतो वाराणसीं पुरीम्।······कल्याणाभिधपुत्रेण०' (म०म०)

४. 'पूर्णिमाया चकारेद लिलेख च शिवालये'। (बा० त०)

सम्पादन—

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन प्रतिष्ठान में उपलब्ध तीन प्रतियों के आधार पर किया गया है जब कि प्रतिष्ठान मे इस ग्रन्थ की कुल पाच प्रतियाँ प्राप्त है। प्राप्त पाचो प्रतियो मे एक प्रति सर्वथा अपूर्ण अर्थात् षष्ठ पटलात्मक होने तथा दूसरी प्रति सर्वथा नवीन एव अविकत अशुद्ध होने से इन दोनो प्रतियो का उपयोग इस ग्रन्थ के सम्पादन मे नही किया गया है। जिन तीन प्रतियो का उपयोग इस सम्पादन मे हुआ है उनका सक्षेपत: विवेचन इस प्रकार है—

इस पुस्तक मे जिस प्रति का पाठ मूल पाठ (आदर्श पाठ) के रूप मे ग्रहण कर ऊपर प्रदर्शित किया गया है उसे यहाँ पर क प्रति के नाम से सम्वोधित किया गया है तथा अन्य प्रतियो को ख और घ नाम से अभिहित कर उनके पाठान्तर पाद-टिप्पणी के रूप मे अङ्कित किये गये हैं। कही-कही ख घ प्रतियो के सङ्गत पाठ को मूल रूप मे स्वीकार कर टिप्पणी के रूप मे मूल प्रति का पाठ दिया गया गया है। उल्लेखनीय है कि क एव ख प्रति मे ११ पटल पाये जाते हैं जब कि घ प्रति मे चौदह पटल पाये जाते है। जहाँ अन्य प्रतियो मे ११ वाँ पटल ६ पद्यो मे ही आवद्ध है वहाँ घ. प्रति मे उक्त पटल ६७ पद्यो मे समाप्त होता है। अत. हमने इस पुस्तक मे घ प्रति का पाठ ११ वे पटल के ७ वे पद्य से प्रारम्भ कर चतुर्दश पटल तक मूल रूप मे प्रकाशित किया है।

प्राप्त प्रतियो के विवेचन से यह आशङ्का होनी है कि प्रस्तुत ग्रन्थ एकादश पटलात्मक है कि वा चतुर्दशपटलात्मक? यद्यपि इस आशङ्का का निवारण तब तक नही हो सकता है जब तक कि पुष्ट प्रमाण उपलब्ध न हो। फिर भी इस सम्बन्ध मे हमारे विचार से यह सम्भावना की जा सकती है कि उक्त ग्रन्थ का सृजन प्रथमत. एकादश पटलो मे ही किया गया होगा तथा इसमे ३ पटलो की बाद मे सवृद्धि की गई होगी जैसा कि एकादशपटलात्मक प्रतियो के अविकत प्राप्त होने तथा ग्रन्थगत सामग्री के सङ्कलनक्रम से आभास होता है। ज्ञातव्य है कि प्रस्तुत ग्रन्थ मे ११ पटलो तक वालको की तान्त्रिक चिकित्सा एव तदनन्तर ३ पटलो मे सर्वजनोपयोगिनी आयुर्वेदिक चिकित्सा उपनिवद्ध है। इससे यह सङ्केत मिलता है कि श्रीकल्याण इस ग्रन्थ मे प्रथमत तान्त्रिकचिकित्सा को ही उपनिबद्ध करना चाहते होगे और

उन्होने बाद मे आयुर्वेदिक चिकित्सा को भी उपनिबद्ध करना उचित समझा होगा । अस्तु, यह विषय अवश्य ही गवेषणीय है ।

प्रतिपरिचय—

१ क ग्रन्थाङ्क—५८६३; रचनाकाल—१६४४ विक्रम सवत् । लिपिकाल—१६२८ (विक्रम) माप — २६×१४ सेन्टीमीटर, पत्रसख्या—१२, पङ्क्ति—१३; अक्षर—७४, लिपिकर्त्ता—लक्ष्मीनारायण ।

प्रति सुन्दर, सुवाच्य, सूक्ष्माक्षर एव अपेक्षाकृत शुद्ध है तथा इसमे ११ पटल उपनिबद्ध है ।

२ ख ग्रन्थाङ्क—४२००, रचनाकाल—१६४४ (विक्रम) लिपिकाल—१८वी शताब्दी (विक्रम), माप—२२ ५×१० १ से मी , पत्रसख्या—३८, पङ्क्ति—८, अक्षर—३४,

एकादशपटलात्मक यह प्रति सुवाच्य तथा प्राचीन है किन्तु इस मे ३ से १२ तक पत्रो का अभाव है ।

३. घ ग्रन्थाङ्क—६६५७; रचनाकाल—१६४४ (विक्रम); लिपिकाल—१८६४ (विक्रम): माप—२३.५×१० ८ से मी , पत्रसख्या—६०; पङ्क्ति ८, अक्षर—३६; लिपिकर्त्ता—पोकरमल्ल ब्राह्मण; लिपिस्थान—झालरापाटण ।

इस प्रति मे १४ पटल हैं तथा यह प्रति सुवाच्य अक्षरो मे लिखित साधारणत ठीक है ।

४. अप्रयुक्त, ग्रन्थाङ्क—५८४१, रचनाकाल—१६४४ (विक्रम); लिपिकाल—२० वी शताब्दी (विक्रम) माप—२६ ५ × १२ ६ से.मी ; पत्रसंख्या—२३; पङ्क्ति—१२, अक्षर—३८ ।

एकादशपटलात्मक यह प्रति सर्वथा नवीन एव सुवाच्य अक्षरो मे लिखित है, किन्तु अशुद्ध है ।

५ अप्रयुक्त, ग्रन्थाङ्क—२२८५४, रचनाकाल — १६४४ (विक्रम) लिपिकाल-- १६ वी शताब्दी, माप—३२ ५ × १६ ५ से मी., पत्रसख्या—७; पङ्क्ति —१७, अक्षर—४८ ।

इस प्रति मे केवल १ से ५ ही पटल प्राप्त है तथा यह प्रति अत्यन्त अशुद्ध एव जीर्ण-शीर्ण है ।

आभारप्रदर्शन—

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, एव वर्त्तमान मे उसके सम्पादन-विभाग के मुख्याधिकारी श्रीलक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी, जिन्होने मुझे इस बालतत्र के सम्पादन को प्रेरणा जन-कल्याणार्थ दी वह वस्तुत. सामयिकी एव दूरदर्शिता की परिचायक थी, ऐसी मेरी मान्यता है । आशा है कि विद्वान् पाठकवृन्द इसके अध्ययनाध्यापन से जनता को लाभान्वित करेगे ।

प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान ने इस ग्रथ के मुद्रण की व्यवस्था कर वास्तव मे आयुर्वेदीय अधुनातन वाड्मय मे एक रत्न की वृद्धि की है, एतदर्थ उसके सुयोग्य तत्कालीन निदेशक डॉ० फतहसिहजी वैद्यसमाज मे धन्यवाद के पात्र हैं । हमारी कामना है कि इसी प्रकार डॉ० साहब तथा आगामी अधिकारी भी कुछ रत्न आयुर्वेदीय वाड्मय को प्रदान कर उसकी श्री-वृद्धि मे अपना स्वस्थ सहयोग देगे।

अन्त मे सनम्र निवेदन है कि विद्वान् पाठक इस ग्रन्थ मे दृष्टि—चाञ्चल्य एव मुद्रण-दोष से कही त्रुटियाँ रह गई हो तो शुद्ध करते हुए मुझे क्षमा प्रदान करेगे ।

विदुषाम्प्रिय —
कविराज विष्णुदत्त पुरोहित. ।

श्रीकल्याणनिर्मितम्

बालतन्त्रम्

अथ बालचिकित्सा

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीधन्वन्तरयेनमः ॥

विघ्नव्रततिविध्वसकारिण दु खकारिणम्[1] ।
कल्याणोऽह नमस्कुर्वे विघ्नेशं ग्रन्थसिद्धये ॥१

प्रयोगसारप्रमुखागमेषु, प्रोक्तेषु शास्त्रेषु च सुश्रुताद्यैः ।
यदुक्तमेकत्र वितन्वतेऽस्मिन्[2] ग्रन्थो मया तत्खलु बालतन्त्रम् ॥२

अष्टौ दोषास्तु नारीणा नवमं पुरुषस्य च ।
रक्तपित्त तथा वात श्लेष्मा च सान्निपातिकम् ॥३

ग्रह-दोषविकाराभ्या[3] देवतानां प्रकोपत[4] ।
अभिचारकृतैर्दोषै रेतोहीन[5] पुमास्तथा ॥४

काकवध्या मृतवत्सा गर्भस्रावी तु च या स्त्रियः ।
आदिवंध्या च गीयन्ते दोषैरेभिर्न चान्यथा ॥५

पुष्प तु[6] जायते तस्या फल तस्या न विद्यते ।
तस्माद्दोषविकाराश्च ज्ञात्वा कर्म समारभेत् ॥६

यस्या. पित्तहत पुष्प प्राज्ञः समुपलक्षयेत् ।
पक्वजम्बूफलाकार कृत्स्न स्रवति शोणितम् ॥७

कटिशूलं भवेत्तस्या उदरं परिदह्यते ।
प्रवर च करोत्युष्णमेतत्पित्तस्य लक्षणम् ॥८

तस्यौषध[7] प्रवक्ष्यामि येन गर्भोऽभिजायते ।
उत्पल तगर कुष्ठ यष्टीमधुकचन्दनम् ॥९

---

१ ख हारिणं । २. ख. विनित्यतेस्मिन्, घ. विवध्यते । ३. ख. चिकारेण । ४. ख. प्रकोपने, घ प्रकोपनं । ५ रेतं, घ. नैव । ६. ख. घ. न । ७. ख घ. प्रत्यौषध ।

तदुलोदकसपिष्ट[1] 'पिवेत् सूर्यस्य सम्मुखी'[2] ।
त्रिदिन च पिवेन्नारी दुग्धभक्त[3] च भोजनम् ॥३५
तेन गर्भो भवेन्नार्याः सत्यमेवन्न[4] सशय[5] ।
सुभ्रती नाम या वध्या चिह्न तस्या वदाम्यहम् ॥३६
गात्र[6] सकोचते नित्य देहे चैव विवर्णता ।
गर्भस्तस्या[7] न जायेत, सद्भा वंध्या च कथ्यते ॥३७
अप्रमाणैश्च दिवसैस्तस्याः पुष्प प्रजायते ।
जीर[8] वचा समङ्गा च गृह्णीयात् शुभवासरे ॥३८
कर्कोटी शृगालकरी[9] पिष्ट्वा तदुलवारिणा ।
'दिनत्रयेण या नारी सूर्यस्य समुखीभवेत्'[10] ॥३९
सदुग्धं पष्टिकान्न च भक्षयेद्दिनसप्तकम्
तेन गर्भो भवेन्नार्यास्त्रिमुखी नाम कथ्यते ॥४०
तस्या चिह्न[11] प्रवक्ष्यामि मैथुने सलिल[12] भवेत् ।
भोजने मैथुने लौल्य गर्भ तस्या न विद्यते ॥४१
व्याघ्रिण्या उत्तरे कालेऽपत्यमेक प्रजायते ।
'त्रिपक्षीक प्रदातव्यमौषध'[13] पुत्रदायकम् ॥४२
वावया सस्रवतेश्चेत दशमेऽष्टमके दिने ।
असाध्या चैव सा वध्या औषध नैव कारयेत् ॥४३
सलिले[14] स्रवते योन्या कमलिन्या निरतरम् ।
असाध्या सा च विज्ञेया औषध नैव कारयेत् ॥४४
व्यक्तिनीनामवध्याया प्रमेहो भवति स्फुटम् ।
रक्तापामार्गज वीज शर्करामर्दकी[15] फलम् ॥४५
औषधी[16] रत्नमाला च गोदुग्धेन प्रपेषयेत्[17] ।
त्रिसप्तदिवस पीत्वा प्रमेह नाशयेद्ध्रुवम् ॥४६

१ घ ०सपिष्ट्वा । २ घ सा भवेत् सूर्यसमुखी । ३. घ. ०भक्तः । ४ घ ०मेतन्न । ५ घ संशयं । ६. घ गात्र । ७ घ. तस्य । ८ घ जीरे । ९ घ कंकालकरिं । १०. घ दिनत्रय यदा नारी सूर्यस्य समुख पिवेत् । ११ घ. तस्य । १२. घ स्खलित । १३ घ त्रिपक्ष्यौषध दातव्य । १४ क सलिल । १५ घ मर्दकं । १६ क औषधी । १७ घ प्रलेपयेत् ।

श्रीनागकेशरं[1] चैवं कर्कोटी सफला तथा ।
द्वे जीरके सवत्सागोक्षीरेण सह पाययेत् ॥४७
दिनत्रयं दुग्धषष्टिभोजन गर्भधारकम् ।
लक्षणानि परिज्ञाय औषधं कारयेत्सुधीः ॥४८

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे षोडशवन्ध्याप्रतीकारो नाम प्रथमः पटलः ॥१॥

द्वितीयः पटलः

पूर्वोक्तचिह्नहीनानां प्रतीकार वदाम्यहम् ।
द्वे जीरके श्वेतवचा वटपिप्पलिकन्दकौ ॥१
शृगालकण्ठरोमाणि कर्कोटीफलमूलके ।
सहस्रमूली सवत्सागोक्षीरेण दिनत्रयम् ॥२
पीत्वा सूर्यस्य सम्मुख[2] क्षीरषष्टिकभोजनात् ।
पुष्ये वा शततारायां शखपुष्पी समाहरेत् ॥३
सवत्सायास्तु पयसा ता सघृष्य 'रस पिबेत्,'[*] ।
वध्या गर्भं दधात्याशु नात्र कार्या विचारणा ॥४
श्वेतकुलत्थसभूतं मूल नागवलोद्भवम् ।
पराजितमृतुस्नाता[3] गोदुग्धेन सम पिबेत्[4] ॥५
दिनत्रयं तथा सप्त (प्त) गर्भो भवति नान्यथा ।
अश्वगधाभवं मूल 'गोघृतेन समन्वितम्'[5] ॥६
ऋतुस्नाता पिबेन्नारी त्रिदिनैर्गर्भधारकम् ।
सुखेन[6] कदलीमूलं तन्मयूरशिखाभवम् ॥७
त्र्यहं गोपयसा नारी पिबेद् गर्भो भवेद् ध्रुवम् ।
बीजपूरस्य बीजानि गोदुग्धेन च पेषयेत्[7] ॥८
पिबेद् गर्भो भवेन्नार्या(र्या) त्रिदिन षष्टिकोदनात् ।
मेषदुग्धीभव[8] मूल गोदुग्धेन[9] सपिबेत् ॥९

---

१ नागकेशरिक । २ घ सन्मुख । ३ घ गर्भ- सपिबेत् । ४ घ ऋतुस्नानान्तरं चैव । ५ घ गोघृत च समन्वितम् । ६ घ मुखेन । ७ घ पीषयेत् । ८. घ. मेषीदु० । ९ घ गोदुग्धे च ।

एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ।
त्रिरात्र पचरात्र वा यावच्छ्रवति शोणितम् ॥१०
ततो योन्यां विशुद्धायामिमां दद्यान्महौषधी. ।
लक्ष्मणां क्षीरसयुक्ता नस्ये पाने[१] प्रदापयेत् ॥११
तेन सा लभते पुत्र रूपवन्त महाकविम् ।
यस्या वातहत पुष्प फल तस्या न विद्यते ॥१२
अतिसूक्ष्मतर रक्तं कुसुम्भोदकसन्निभम् ।
कटिशूल भवेत्तस्या योनिशूलं तथा ज्वरम् ॥१३
सहकारस्य मूलानि तथा व्याघ्रनखस्य च ।
वृहतीजाम्ववीमूल क्षीरेणालोड्य तत्पिवेत् ॥१४
सप्ताह पचरात्र वा यावच्छ्रवति शोणितम् ।
ततो योन्या विशुद्धाया लक्ष्मणा क्षीरसयुताम् ॥१५
नस्ये पाने[२] च दातव्य तेन सा लभते सुतम् ।
यत्र श्लेष्महत पुष्प चिह्नं[३] तस्या वदाम्यहम् ॥१६
वहुल पिच्छिल रक्तं नातिरक्त भवेत्तदा ।
नाभिमडलदेशे तु शूल भवति दारुणम् ॥१७
अर्कमूल प्रियंगु च कुसुम नागकेशरम् ।
वला चातिवला चैव अजाक्षीरेण पेपयेत् ॥१८
त्रिफला त्रिकटुश्चैव चित्रक समभागकम् ।
अजाक्षीरेण सयुक्तमालोड्य युवति पिवेत् ॥१९
त्रिरात्र पचरात्र वा यावत् स्रवति शोणितम् ।
ततो योन्या विशुद्धायां लक्ष्मणा तस्य(त्र)दापयेत् ॥२०
सन्निपातहत[४] पुष्प ज्वरस्तीव्रश्च जायते ।
शोणित तु भवेत्कृत्स्नं अत्युष्म पिच्छल वहु ॥२१
कुक्षिदेशे[५] तथा योन्या कटिशूल च जायते ।
गात्रभगो भवेत्तस्या वहुनिद्रा च जायते ॥२२

---

१ घ नस्यपान । २. घ नस्यपाने च । ३ घ फल । ४. घ. सन्निपाताहतं । ५ घ कुक्षि ।

गन्धर्वहस्तमूलं[1] च सहकार त्रिवृत्तकम् ।
उत्पलं तगरं कुष्टं यष्टीमधुकचन्दनम् ॥२३

अजाक्षीरेण पिष्ट तु[2] सप्तरात्रं तत. पिबेत् ।
रजोहात्पंचरात्रं च यावच्छ्रवति शोणितम् ॥२४

ततो योन्यां विशुद्धायां श्वेतार्कक्षुद्रणी तथा ।
लक्ष्मणा वंध्यकर्कोटो श्वेता च गिरिकर्णिको ॥२५

गवां क्षीरेण संपिष्ट[3] 'नस्ये पान प्रदापयेत्'[4]।
दक्षिणे लभते पुत्रं वामे पुत्री न सशयः ॥२६

पूर्वोक्तदोषहीनाया ग्रहदोष न संशय. ।
जन्मपत्री समालोक्य ग्रहपूजा समाचरेत् ॥२७

व्रत तस्य प्रकर्त्तव्यं मध्यमस्य ग्रहस्य च ।
विकारेण यथा[5] वंध्या स्फुट चिह्नं तदा भवेत् ॥२८

रोगनाशे भवेद्गर्भो[6] नात्र 'कार्या विचारणा'[7] ।
देवताकोपवंध्या या तस्याः चिह्नं वदाम्यहम् ॥२९

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां मावेशे (अमाया) वेदना तथा ।
गोत्रदेवी समाराध्य[8] दुर्गामत्र ततो जपेत्[9] ॥३०

गोत्रदेवी समभ्यर्च्य पुत्र सा लभते ध्रुवम् ।[10]
कृत्याकृतं[11]यदा दोषं शरीरे वेदना भवेत् ॥३१
दुर्गामत्र जपेन्नारी ततो गर्भं[12] भवेद् ध्रुवम् ।
अन्यद् वध्याष्टकं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥३२
त्रिपक्षी सुभ्रती सद्भ्रातृमुखी व्याघ्रिणी वक्री ।
कमली यक्तिनी चैव तासा चिह्नं वदाम्यहम् ॥३३
त्रिपक्षा[13] नाम या वध्या त्रिपक्षे पुष्पिता भवेत् ।
द्वे जीरके श्वेतवचा कर्कन्धोश्च[14] फल समम् ॥३४

---

१. घ हस्तिमूलं । २. घ च । ३. घ संपिष्य । ४. घ. नस्यपानं च दापयेत् । ५. घ यदा । ६ घ गर्भं । ७ क कार्यं विचारणा, घ कार्या विचारणः । ८ क. ग. समाराध्या । ९ घ. तदं । १०. घ समभ्यर्च्य महादेवी पुत्र तस्य भवेद् ध्रुवम् । ११ घ. ०कृत्य । १२ घ गर्भो । १३ घ त्रिपक्षी । १४. घ कर्कोटनाश्च ।

ऋतुत्रय ततो गर्भो भवत्येव न सशय. ।
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा लोध्र जीर्णो गुडस्तथा ॥१०
वर्तिकृता[1] योनिमध्ये क्षिप्रा सा गर्भकरी मता ।
पिप्पली देवतादारु[2] लाक्षागुग्गुलुनिर्मिता ॥११
वर्त्तिका योनिमध्ये तु क्षिप्ता शोधनकारणी ।
शुण्ठी मुस्ता हरिद्रे द्वे बला हिंगुमिसिपुर. ॥१२
एभिर्वर्त्ति कृता योनौ[3] क्षिप्ता शोधनगर्भकृत् ।
गन्धक शङ्खचूर्णं च सममात्रा[4] मन शिला ॥१३
जलेन सह सपिष्य[5] निक्षिपेद्योनिमण्डले[6] ।
वेदनाशोथकण्डूश्च गच्छत्येव न संशयः ॥१४
बला सिताढ्यातिबला मधूक, वटस्य शुंग गजकेशर च ।
एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीतं[7], वन्ध्यापि पुत्र नियत प्रसूयते[8] ॥१५
एरण्डधात्रीफलमातुर्लिंगबीजानि मूल सितकण्टकार्या. ।
दिनत्रय क्षीरयुत प्रपीतमेतत्सुख गर्भवर प्रदत्ते ॥१६॥
अश्वगधा कषायेन पय सिद्धिघृतान्वितम् ।
प्रात· पीत्वाऽवला स्नाता[9] धत्ते गर्भं न सशय ॥१७
पुष्पोद्धृत सद्विधि लक्ष्मणाया, मूल तथान्यत्सहदेविकाया ।
घृतान्वित कन्यकया प्रपिष्ट, दुग्धेन पीत प्रकरोति गर्भम् ॥१८
पत्रमेक पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम् ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवत न सशय[10] ॥१९
कुरंटमूलं धातक्या कुसुमानि वटाकुरा· ।
नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रद ध्रुवम् ॥२०
संयोज्य तुल्य वृषभस्य मूलं, तैलं प्रपीत कुडवप्रमाणम् ।
स्त्रियः पयोभक्तभुजो दिनान्ते, सुत प्रदत्ते[11] नियत प्रशस्तम् ॥२१

---

१ घ ०कृत्वा । २. घ देवदारु च । ३ घ योनि । ४ घ मात्रा । ५. घ. सपिष्ट्वा । ६ घ. ०योनिमंडलं । ७ घ. ०घृतेन पीतं । ८. घ प्रसूति । ९. घ बला । १० घ. संशय । ११ घ. प्रदत्ते ।

पुत्रमंजारिकामूलं शिवलिङ्गीफलान्वितम् ।
पुष्पोद्धृत पयोमिश्रपीत गर्भप्रदं ध्रुवम् ॥२२

पुत्रमंजारिकामूल विष्णुक्रान्ते सलिंगका[1] ।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति न कन्या जायते स्फुटम् ॥२३

रसः प्रपीतः सितकंटकारी, मूलस्य पुष्पं त्रिदिनं जलेन ।
मयूरमूलस्य च नासिकाया, दत्ते सुत दक्षिणसंपुटेन ॥२४

मंजिष्ठा मधुकं कुष्ठ त्रिफला शर्करा वचा ।
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगु तिक्तकरोहिणी ॥२५

काकोली क्षीरकाकोली मूलं चैवाश्वगधजम् ।
[2]जीवकर्षभौ मेदे रेणुका वृहतीद्वयम् ॥२६

उत्पल चन्दनं द्राक्षा पद्मक देवदारु च ।
एभिरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थ विपाचयेत् ॥२७

चतुर्गुणेन पयसा युक्त तन्मृदुनाग्निना ।
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं प्रवर्त्तते ॥२८

पुत्रान् जनयति श्रेष्ठान् श्रीयुक्तान्प्रियदर्शनान् ।
वध्या च लभते गर्भं नात्र 'कार्या विचारणा'[3] ॥२९

या चैवास्थिरगर्भा स्यात् मृतवत्सा[4] च जायते ।
अल्पायुर्जनयेद्वाल[5] या च कन्या प्रसूयते ॥३०

कल्याणे[6] ये गुणाः प्रोक्तास्ते गुणाश्चात्र[7] वै भवेत् ।
एतदेव कुमाराणां सर्वग्रहविशेषणम्[8] ॥३१

गुडमेकपल लीढा पुराणौ वावलौ कृतौ ।
रक्षिता[9] गर्भभयतः सुरतैकरता भवेत् ॥३२

आरनालपरिपोषित त्र्यहं, [10]वाणपुष्पसहित तु कामिनी ।
सत्पुराणगुणमुष्ट[11]-सेविनी, नैव गर्भ धरते कदाचन ॥३३

---

१ घ सलिंगकम् । २ घ जीवकर्षभको । ३ क कार्यं विचारणात् । ४. घ. मृते । ५. घ अल्पायुषं । ६ घ. कल्याण । ७. घ. ०प्यत्र । ८. घ. सर्वं ग्रह-विश्लेषणम् । ९. क. रक्षता । १० घ. वाणि । ११. घ ०मुष्टि ।

पीत ज्योतिष्मतीपत्रराजिको ग्रासन श्यहम् ।
शीतेन पयसा पिष्ट कुसुम जनयेत् ध्रुवम् ॥३४

शुठी गुडेन सपिष्ठा भक्षयेद्दिनसप्तकम् ।
तेन गर्भो भवेन्नार्या सत्य सत्य मयोदितम् ॥३५

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे साधारणवंध्यौषधकथनं नाम द्वितीयः पटल. ॥२॥

तृतीयः पटलः

शुक्रहीनस्य वै पुस कथयाम्यौषधीमहम्[१] ।
माक्षिक धातुमाक्षीक लोहचूर्णं शिलाजतु[२] ॥१

पारदच्च विडग च पथ्याभागसमन्वितम् ।
घृतेन भावयित्त्वा तु पात्रे कृत्वा तु लौहजे ॥२

विडालपदमात्र तु भक्षयेच्च दिने दिने ।
तस्य[३] व्याधिर्जरा मृत्युर्वर्षेणैकेन नश्यति ॥३

कामयेत् स्त्रीसहस्र तु वहुशुक्रो[४] वहुप्रज ।
कपिकच्छुकमूलं च क्षीरपिष्ट पिवेन्नर ॥४

अक्षय जायते शुक्र कामयेत् स्त्रीसहस्रश· ।
मापा यवाश्वदष्ट्रा वा वानरी शतमूलिका ॥५

पयसा पेषयेत्तेन पक्वयेत् घृतपूपकम् ।
दिनान्ते भक्षयेदेक ततो क्षीर पिवेन्नर ॥६

षण्मासाभ्यन्तरे[५] चैव वृद्धोपि तरुणायते ।
मासमेकप्रयोगेन शुक्रवृद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥७

धातकी[६]-त्रिफलाचूर्णं रसेनेक्षुरकेन[७] तु ।
भावयित्त्वा ततो धीमान्मधुशर्करसयुतम् ॥८

---

१. घ. कथयाम्यौषधान्यहम् । २ घ शिलाजितं । ३. घ तस्या । ४. घ. शुक्र । ५ घ षण्मासाभ्यां । ६. घ धातुकी । ७. घ. रसेन्ये० ।

जीर्णकाय पिबेल्लीढ क्षीर पीत्वा ततो निशि ।
कामयेत् स्त्रीसहस्राणि कामाग्निस्तस्य वर्द्धते[1] ॥९

कपिकच्छुकमूलानि तिलाश्चैवाश्वगधिका ।
विदारीकदज[2] चूर्णं षष्टिकातन्दुलान्वितम् ॥१०

एतानि पयसा पिष्ट्वा घृतेन सह पाचयेत् ।
दिने दिने च सभक्षेद्यदि नारी गृहे भवेत्[3] ॥११

विदारी गोक्षुरं चैव पयसा सह भक्षयेत् ।
जीर्णकाये[4] प्रदातव्य मन्दाग्नेश्च[5] प्रदीपनम् ॥१२

माषा यवाश्वगधा च वानरी शतमूलिका ।
कोकिलाक्षस्य बीजानि शाल्मली च शतावरी ॥१३

[6]घृतालोढ्रपय. पीत्वा खडो (पण्ढो) नारीरनेकधा[7] ।
'यवमाषोद्भव[8] चूर्णं शर्कराक्षीरमिश्रितम् ॥१४

जीर्णान्ते च पिबेत् क्षीर शुक्रवृद्धिस्ततो भवेत् ।
धात्रीफलोद्भव चूर्णं रसेनेक्षो सुभावितम्[9] ॥१५

विबुधो बहुधा पश्चात् औषधी[10] पीत्वा पुन: पुन ।
मधुशर्करया युक्त समभागेन कारयेत् ॥१६

पुरुषाणा च नारीणा प्रयोक्तव्य सुतार्थये ।
नस्ये पाने तथाभ्यङ्गे तानि नित्य च सेवयेत् ॥१७

शतावरी तु नि पीड्य प्रस्थद्वितयमाहरेत् ।
तैल तेन पचेत्प्रस्थ क्षीर दद्याच्चतुर्गुणम् ॥१८

तत्तैल च पचेद्धीर. शनैमृ द्वग्निना शुभम् ।
औपधीना ततो भाग दापयेत्कर्षमात्रकम् ॥१९

शतपुष्प देवदारु 'मास तैलेयक त्वचा'[11] ।
चन्दन तगर कुष्ठ एला चाशुमती[12] तथा ॥२०

१ क वद्धते । २. क विदारीकदस । ३ घ. गृहं । ४. घ. जीर्णकाय । ५. घ वदनाग्नि । ६. घ. घृते० । ७ घ ०मनेकधा । ८ घ. ०माषाभवं । ९. घ स्तु भावितस् । १०. घ पेष्ययित्वा । ११ मासैशैलेयकं वचा । १२ घ वशुमति ।

रात्स्ना चैवाश्वगधा च विडङ्ग मरिचानि च ।
वीलपर्णी[1] वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तिका ॥२१

कृष्णा चैवाश्वगधा च विडग मरिचानि च ।
सैन्धव च सम दद्यात् विश्वभैषजमेव च ।
एभिस्तैल पचेद्धीमान् शृगवेरमत परम् ॥२२

[2]कुब्जाऽन्यवामना चैव पगुपादजटा[3] भवेत् ।
महावातेन[4]भग्नाना विषार्त्ताना[5] विसर्पिणाम् ॥२३

सकोचने तु गात्राणा वातभग्नाश्च ये नरा ।
विष्कुम्भे सन्निपाते च भृग ग्रन्थिविनाशने ॥२४॥

वातगुल्मे च भग्नाना हृच्छूले[6] दारुणे ग्रहे ।
शमयेत्त्वक्षिशूलानि कर्णशूलान्यनेकश ॥२५

रोगानतगलोत्थ[7] च सर्वमेतद्व्यपोहति ।
येषा शुष्कति वै कामो ये चाढेन तु विह्वला ॥२६

क्षीणप्रजाश्च[8] ये मर्त्या जरया जर्ज्जरीकृता ।
मदमेधान्विता[9] ये च श्रुतिर्येषा प्रणश्यति ॥२७

प्रमेहेषु च सर्वेषु अडसर्कारिकासु च ।
भ्रममारणेषु घोरेपु कामला-पाण्डुरोगजित् ॥२८

भुक्त न जीर्यते येषामतर्दाह्यादिदारुणम्[10] ।
या च वध्या भवेन्नारी काकवध्या च या भवेत् ॥२९

भग्नयोनिश्च या काश्चित् गर्भ गृह्णाति या न वा ।
अपस्मारी[11] गडमाला वातशोणितमेव[12] च ॥३०

पिडिका[13] सर्वदुष्टा तां दद्रुपामाविवर्चिकाम् ।
विनिहन्ति ज्वरा सर्वे वातपित्तास्तथैव च ॥३१

---

१. घ. वीलुपर्णी । २. घ कुब्जान्या । ३. घ जडा । ४ घ. महावातेथ । ५. घ चिन्तार्त्तान् । ६. घ. हनुस्थे । ७. घ. मतर्गलोत्स च । ८ घ क्षीणेन्द्रियाश्च । ९ घ. मदमेधाविना । १०. घ द्विदारुण । १२. घ अपष्मार । १२. घ वातपित्त-स्तथैव च । १३. घ पिटिका ।

पूतिगंधमुखा ये च व्रणदुष्टार्दितास्तथा ।
गूढगर्भा[1] च या नारी यस्या स्याच्च भगन्दरम् ।।३२

ज्वरेषु चैव सर्वेषु तैलमेतद्विशेषतः ।
कामाग्निजनन 'चैतत् वर्णवीर्यंकर परम्'[2] ।।२३

[3]सिन्दूरवर्णं कमलासनस्थ[4] गजानन सर्वसुखैकहेतुम् ।
प्रयोगरत्नावलिनाम तत्र 'चकार कल्याण सुकामवर्द्धनम्'[5] ।।३४

मासमेक पिबेद्यस्तु यौवनस्थ[6] पुनर्भवेत् ।
एतत्सिद्धार्थक तैल नरनारीहितावहम् ।।३५

पिप्पलीलवणोपेतौ[7] 'बस्ताडौ क्षीर'[8]-सर्पिषा ।
साधितो भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ।।३६

बस्ताडसिद्धे पयसि साधितौ[9] न सक्तुतिलान् ।
य: खादेत्स पुमान् गच्छेत् स्त्रीणा शतमपूर्ववत् ।।३७

चूर्णं विदार्या रंचित स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिः क्षौद्र-[10]युत लीढ[11] शत गच्छेन्नरोऽङ्गना[12] ।।३८

एवमामलकीचूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्त लीढ्वा पयः पिबेत् ।।३९

एतेनाशीतिवर्षोपि युवेव रमते सदा ।
स्वयं गुप्तेक्षुरकजं बीजचूर्णं सशर्करम् ।।४०

घृतोस्मे(ष्णे)न नर[13] पीत्वा[14]पयसा तत्क्षयं व्रजेत् ।
उच्चटाचूर्णमप्येव क्षीरेणोत्तरमुच्यते ।।४१

शतावर्य्युच्चटाचूर्णं पेयमेव सुखाम्बुना ।
कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।।४२

पेयोनुपान यो लिह्यान्नित्यवेगशतो[15] भवेत् ।
मूशलीकंदचूर्णं च गुडुचीसत्त्वसयुतम् ।।४३

---

१. घ. मूढ० । २ घ. चैव बलवीर्यविवर्द्धनम् । ३. घ. ॐ नमः । ४. घ. ०स्थ. । ५. घ प्रनम्य धीरो वनिताविवर्द्धनम् । ६. घ. यौवनस्था । ७ घ. पेत । ८. घ वस्तांडक्षीरसर्पिषा । ९. घ. साधिता । १०. घ. क्षौद्रं । ११. घ. लीढ्वा । १२ घ. नरांगनाम् । १३. घ नरं । १४. घ. पिष्ट्वा । १५ घ ०मित्य० ।

वानरीगोक्षुराभ्या च शाल्मली शर्करामलै ।
आलोड्या घृतदुग्धाभ्या पाययेत् कामवृद्धये ॥४४

गोक्षुरक क्षुरक[1]शतमूली नागवलाऽतिबला च ।
चूर्णमिद पयसा निशि पीतं[2] यस्य गृहे प्रमादाशतमस्ति ॥४५

वाराहीकदश्रृगाटकपलयुगल चूर्णित किञ्चिदाज्ये,
मृष्ट कल्के दलत्वक् सुरकुसुमकणा[3] केशराणा पल च
श्वेता[4] सर्पि[5] ममानां पयसि[6] सगुणे साधुपक्क महिष्या ।
कामोद्दो[7]-धापकार्यास्तदनु च वटका[8] कामुकै शुक्रवृद्ध्यै ॥४६

एता[9] सदा सेवमानो वृद्धोपि तरुणायते।
तरुणीना शत याति[10] तरुणस्य च[11] का कथा ॥४७

लघुशाल्मलिमूलेन तालमूलीसुचूर्णितम् ।
सर्पिषा पयसा पीत्वा नरश्चटकवद् भवेत् ॥४८

वृद्धशाल्मलिमूलस्य रस[12]शर्करया पिबेत् ।
एतत्प्रयोगात्सप्ताहाज्जायते रेतसाबुधि[13] ॥४९

सितवारिजकदकृत पयसा प्रपिबेन्नर[14] चूर्णवरं सहसा ।
स भवेद्वनिताशतसौख्यकर सुरते सतत तरुणीषु रत ॥५०

वीरा-क्षीरविदारिका[15] कुरवक श्वेताढकार्द्धार्द्धकम्,
प्रस्थ शाल्मलिमूलजातरसतो नीत्वा तथैन[16] पचेत्,
चातुर्जातफलान्विता मधुयुत कार्य पर[17] शुक्रलम्[18] ।
लेह्योय पलितातको बलकर ख्यातो वलीनाशक[19] ॥५१

शतावरी गोक्षुरकेण दर्भ, 'श्रृगाटक चातिवलात्मगुप्ता'[20] ।
सितासमाना[21]निशि चूर्णमेषा दुग्धेन पीत प्रकरोति पुष्ट्यम्[22] ॥५२

---

१ घ क्षुरकः । २ घ. दिन पेय । ३ घ सु कुसुमकणा । ४ घ श्वेता । ५. घ सर्वं । ६ घ. दशगुणे । ७ घ. कामोद्वेधा । ८ घ ०तदनु वटका । ९. घ. एना । १० घ. यांति । ११ घ च । १२ घ सम । १३ घ रेतसोधि । १४. घ: ०मनु । १५. क घ विदादिरिका । १६. घ तथा नो । १७. घ. कार्यं । १८ घ शुक्रलो । १९ घ वला । २० घ. श्रृंगारको नाम वलात्मगुप्ता । २१. घ. ०समानं । २२. घ. पुष्टि ।

विसदाफलबीजानां चूर्णं[1] पीत निशामुखे ।
पयसा कर्षमात्रेण खं(ष)डत्व नाशयेत् ध्रुवम् ॥५३

खसफल[2]शुठीक्काथ' पोडशशेष' सितायुत पीत' ।
कुरुते रतेन पुंसो रेत [3] एव विनाम्लेन ॥५४

आद्रोवरटीछत्रे[4] नव्ये कदे सुदर्शनाखाख्य [5] ।
साधितमतसीतैल विन्दुरय नाभिलेपतो[6] धत्ते ॥५५

जातीफलार्ककरहाटलवगशुण्ठी
कंकोल कुकुमकणा हरिचन्दनानि ।
एतै समानमहिफेन समेन[7] तुल्यां,
श्वेता निधाय मधुना चटक[8] विदध्यात् ॥५६

माषद्वयोन्मितमम् निशि भक्षयित्वा,
मिष्ट पयस्तदनु माहिषमाशु पीत्वा ।
कुर्वन्तु कामुकजना न[9] तु विंदुपातात्[10],
चेतासि तानि चकितानि कलावतीनाम् ॥५७

कांचनस्य[11] फलमूलदलानां, पूग-[12]चूर्णसहितेन रसेन ।
लिंगलेपमसकृत्प्रहरार्द्धं, बिंदुवेगधरणाय निबद्धम् ॥५८

अहिफेनभव[13] दुग्ध रक्तिकात्रितयोन्मितं ।
विंदुवेगध्रुव[14] धत्ते सितया निशि भक्षितम् ॥५९

मखविष्टा[15] पिष्टाया लिंगलेप कृतो रतावसरे ।
द्रावयति वारवनिताऽपि वारवारं मत[16] नियतम् ॥६०

चूर्णितैर्मधुसयुक्तैर्महाराष्ट्रीफलद्रवै [17] ।
लिंगलेपेन सुरते द्रवा भवति योषिता ॥६१

---

१ घ. चूर्णं । २. घ. विषदाफल । ३ घ. पुंसो रेतपति । ४. घ, आद्रे वरटि छत्रेन । ५. घ ०ख्याख्य. । ६. घ नो । ७ घ मनेन । ८. घ. वटक । ९ घ कामजनका । १०. घ पाते । ११ घ कांचनार । १२. घ पुंग । १३ घ. अहि-फेनं दुग्धशुद्ध । १४ घ वेग । १५ घ मखविष्ठा । १६. घ. मरतं-मतर । १७ घ फल छदैः ।

मोचरसामलकीत्वक् कामावीभिरनुनिश शुभगा ।
स्वभगे विधाय वर्त्ति सुरते कात सुखीकुरुते ॥६२

प्रच्छालन[1] भगो नित्य[2] कृत्वामलकवल्कलै·
रेतेपि[3] कामिनी कामो वालेव कुरुते रतिम् ॥६३

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे पुरुषवीर्यवृद्धिकथन नाम तृतीयः पटलः ।

चतुर्थः पटलः

शुद्धार्त्तवा[4] दोषविमुक्तशुक्र सुगधलेपै परिलिप्तगात्रः ।
प्रशस्तनक्षत्रदिने प्रहृष्टा[5] नारीमुपेयाद्दयित[6] सुतार्थी ॥१

सेवेत वाजीकरणादि नित्य पय पिबेत् 'शर्करया विमिश्रम्'[7] ।
दानेन मानेन च भूसुराणा मोद विदध्याद्विधितोपयुक्त ॥२

दिनेषु युग्मेषु पुमान् प्रदिष्ट प्रोक्तान्यथा स्त्री तदतुल्यबुद्धि ।
विचार्य सर्वं सुखतोऽप्रमत्त प्रवृद्धशुक्रो दयितामुपेयात् ॥३

आहारचारचेष्टाभिर्यादृशीभि समन्वितौ ।
स्त्रीपुसौ समुपेयाता तत पुत्रोऽपि तादृश ॥४

रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेत्पुमान् ।
रक्तशुक्रसम चैव भवतीह नपुसकम् ॥५

रक्तशुक्रमकाले च भवेत्तु 'निष्फला क्रिया'[8] ।
शुक्रक्षये नपुसत्वान्नारी गर्भं न गृह्णति ॥६

विचार्यैव सुधी[9] पश्चात् प्रयोगान्कारयेत् सदा ।
प्रणव[10] कामराज च 'देवक्याश्च सुत वदेत्'[11] ॥७

गर्भार्थं च प्रदातव्य मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
गोविन्देति पद ब्रूयात् वासुदेवपद[12] तत ॥८

---

१ घ. प्रक्षालन । २ घ भगे । ३ घ रतोपि । ४. घ. शुद्धार्त्तवं । ५. घ. प्रहृष्टं । ६ घ. मुपेच्छा । ७ घ शर्करया च मिश्रम् । ८. घ निफलानि च । ९. क. सुधी । १० घ प्रणव । ११ घ देवकीसुत सवदेत् । १२. घ वास्तुदेव ।

जगत्पतिं[1] समुच्चार्य देहि मे तनयं ततः ।
देवेशेति[2] पदं चोक्त्वा तवाहं शरणं गतः ॥९

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा औषधं च प्रदापयेत् ।
औषधीग्रहणे मन्त्राः कथ्यन्ते कृपया[3] शुभाः ॥१०

गत्वौषधिसमीपं तु मूले कृत्वा समं बुधः ।
कीलकं खादिरं[4] ग्राह्यं 'मन्त्रेणानेन मन्त्रितम्'[5] ॥११

नारायणायै(य)[6] स्वाहेति प्रणवादिर्नवाक्षरः[7] ।
उत्तराभिमुखो[8] भूत्वा वक्ष्यमाणेन सखनेत् ॥१२

प्रणवो भुवनेशानी येन त्वां खनते[9] ततः ।
ब्रह्मा येन तु रुद्रोऽथ केशवेति वदेत् कृतः ॥१३

तेनाहं खनयिष्यामि[10] सिद्धिं देहि महौषधे ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण उद्धरेदौषधीं बुधः ॥१४

सर्वार्थसिद्धिनी[11] स्वाहा प्रणवादिर्नवाक्षरः ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण प्राशनं कारयेत्सुधीः ॥१५

ॐ कुमारजननीयै (नन्यै) स्वाहा मन्त्रो दशाक्षरः ।
लक्ष्मणासंग्रहः कार्यः[12] 'प्रवृत्ते चोत्तरायणे'[13] ॥१६

सम्पूर्णमासपक्षे तु 'मा गृह्णीयात् महौषधीम्'[14] ।
चिह्नं तस्याः प्रवक्ष्यामि ज्ञायते ननु[15] सा जनैः ॥१७

रक्तबिंदुयुतैः पत्रैर्वर्तुलाकृतिभिर्युता ।
[16]परुषाकारसंयुक्ता लक्ष्मणा सा निगद्यते ॥१८

आत्मच्छाया परित्यज्य गृह्णीयात्पुष्यके सुधीः ।
प्रणवं हृदये प्रोच्य बलवर्द्धने[17] चोच्चरेत् ॥१९

---

१. क जगत्पति । २. घ. तदेवेपि । ३. घ. क्रमया । ४. घ. खदिरं । ५. घ. शुभं मत्रेण मन्त्रिता । ६ घ. नारायणीय । ७. घ ०नवायुधः । ८ घ. ०मुखे । ९ घ. खनने । १०. घ सर्तयिष्यामि । ११. घ ०सध्वीनी । १२. घ कार्यं । १३. घ. प्रकारेशे तत्रा गणे । १४ घ गृह्णीयाच्च महौषधिम् । १५. घ. येन । १६. घ. पुरुषाकार । १७. घ ०वर्द्धनि ।

शुक्रवर्द्धनी[1] पुत्रेति जनति[यित्री][2] वह्निवल्लभा।
विंशत्पर्णेन विधिना नस्ये[3] पान प्रदापयेत् ॥२०

नाड्या हि[4] दक्षिणाया तु वायौ वहति दापयेत्।
ऋतुस्नातानतर तु[5] वध्यापि पुत्रमाप्नुयात् ॥२१

मृतवत्सा तु या नारी दुर्भगा ऋतुवर्जिता[6]।
या सूते कन्यका[7] वध्या स्नानमासा[8] विधीयते ।२२

अष्टम्या वा चतुर्दश्यामुपवासपरायण।
ऋतौ शुद्धे चतुर्थेऽह्नि प्राप्ते सूर्यदिनेऽथवा[9] ॥२३

नद्या सुसगमे कुर्यान्[10] महानद्या विशेपतः ॥२४
शिवालयेऽथवा गोष्ठे 'विविक्ते वा गृहागणे'[11]।

आहिताग्नि द्विज शान्त धर्मज्ञ सत्यशीलिनम् ॥२५

स्नानार्थं[12] तीर्थभेदेन[13] निपुण रौद्रकर्मणि।
ततस्तु मण्डप कुर्यात् चतुरस्र मुदकप्रभम् ॥२६

[वि]विध[14] चदनमाल च गोमयेनानु[15]- लेपितम्।
तन्मध्ये श्वेतरजसा सपूर्ण पद्ममालिखेत् ॥२७

मध्ये यस्य महादेव स्थापयेत्कर्णिकोपरि[16]।
दद्याद्दलेषु 'नंद्यादी चतुष्क विधिपूर्वत'[17] ॥२८

इन्द्रादिलोकपालाश्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत्।
देवी विनायक चैव[18] स्थापयेत्तत्र पार्थिवम् ॥२९

दद्याद्गंध[19] गधपुष्प धूपदीप गुडौदनम्।
भिन्नाना[20] विधिवद्द्यात्फलानि[21] विविधानि च ॥३०

---

१ क वर्द्धनि। २ घ जनंति। ३ क नसि। ४. घ तु। ५ घ. ऋतुस्नान्तरं तु। ६ घ. रुक्वर्जिता। ७ घ कन्यका। ८ घ ०मासं। ९. घ. सूर्यें। १० घ. नद्यास्तु संगमे तुर्यात्। ११. घ. विधु वा ग्रहणांगणे। १२ घ. स्नानार्थे। १३ घ मर्यभेदेन। १४. क. वधि। १५ क. ०तासु। १६ घ कर्णां०। १७ घ नद्या हीनचतुर्यं विविपूर्वकम्। १८ घ देव। १९ घ. दद्यादगंध। २०. घ भिन्नानि। २१ घ. विविधा दद्यात्०।

चतु.कोणेषु शृङ्गाणां मखच्छदविभूषितम्[१] ।
अग्निकार्ये[२] शृते कुण्डे पुष्पपात्रैस्त्वलङ्कृते[३] ॥३१

लवणं ~ पिषा युक्त[४] घृतेन मधुना सह
मनस्तोकेन जुहुयात् कृते होमे नवग्रहे[५] ॥३२

द्वितीयस्यात्मकार्यस्य[६] कर्त्ता च ब्राह्मणो[७] भवेत् ।
'रुद्रजाप्यकृता कार्यं'[८] सितचदनर्चितम् ॥३३

सितवस्त्रपरीधानं सितमालाविभूषितम् ।
शोभयेत्कंकणैर्वध्या[९] कर्णवेष्ट्यंगुलीयकै[१०] ॥३४

मडपस्य 'समीपस्थो जपेद्रुद्र'[११] विमत्सर : ।
यावदेकादशगत (शतः) पुनरेव 'जपेच्च तान्'[१२] ॥३५

देवमंगलयत्कार्यं द्वितीय मंडल शुभम्[१३] ।
तस्य मध्ये तु नारी वा[१४] श्वेतपुष्पैरलङ्कृताम् ॥३६

श्वेतवस्त्रपरीधानां श्वेतगधानु[१५]-लेपिताम्[१६] ।
सुखासनोपविष्टा[१७] य आचार्यो रुद्रजोपक[१८] ॥३७

अभिषिंचेत्ततश्चेतामर्कपत्रशुचाबुना[१९] ।
चतु·पष्टिरिचेनैव[२०] रुद्रेणैकादशेन तु[२१] ॥३८

शतानि सप्तपर्णानि चतुर्भिरधिकानि तु[२२] ।
वर्णानामिति ऋचाता : तासां चतु षष्टिसख्यानामेकादशशतत्व पठितानामिय[२३]संख्या
अच्छिद्रेति[२४] मन्त्रेण स्नानार्थं विनिवेशयेत्[२५].
अश्वस्थानात् गजस्थानात् वल्मीकात्सगमात् ह्रदा त् ॥३९

---

१. घ मुपस्यं दलभूषणम् । २ घ ०कार्य । ३ घ ०पात्रेण लक्ष्ति । ४ क. युक्त, ग. युक्ता । ५ ग ०ग्रह । ६ घ. द्वितीयस्यात्मिकार्यस्य । ७ घ ब्रह्मणो । ८ घ रुद्रजप्यं तदाकार्यं, ग रुद्रजप्यकृदा कार्यं । ९ ग शोभयेत्ककर्णं वद्ध्यौ । १० क. कवेष्टयगुलंयकं., ग ० गुलियकं । ११ घ समीपस्याजये० । १२ ग जपेयनात् । १३ घ. सुलम् । १४. ग नारीणां । १५ ग घ श्वेतगधाकलिपिता । १६. घ लेपिता । १७ क सुचासनो । १८. क रुद्रजामिव, घ. रुद्रजाप च । १९. ग. ०अर्कपुत्रप्रचाबुना । २०. ग. तेव । २१. ग. ननु । २२. ग न तु । २३ घ ० मय । २४. घ. अधिद्रेणेति । घ २५ निनिवेशयत् ।

वेश्यागणाद्राजगृहात् गोष्ठादानीय वै मृदम् ।
सर्वौषधी[1] रोचना च नदीतीर्थोदकानि च ॥४०

एतत्सक्षिप्य[2] कलशे शिवसंज्ञे सुपूजिते[3] ।
आपादतलकेशान्तं कुक्षिदेशे विशेषत[4] ॥४१

सर्वाङ्गं लेपयेद् भक्त्या सुशीला काचिदगनाम् ।
रुद्राभिजप्तेन ततः स्नापयेत्कलशेन ताम् ॥४२

तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः ।
सर्वतो दिक्स्थैः पश्चात्स्थापयेत्कलशान् क्षितौ ॥४३

स्नात्वैव च स्थापकाय[5] दद्याद्राजनकाञ्चनम् ।
होतुरेवात्र निर्दिष्टाक्षा दक्षिणां गां पयस्विनीम् ॥४४

ब्राह्मणानामथोऽन्येषा स्वशक्त्या साधु पूजनम्[6] ।
गोवस्त्रं[7] कांचनादीनि दत्त्वा सर्वान्क्षमापयेत् ॥४५

कृतेनानेन स्नानेन नरो वा नार्यकापि[8] वा ।
सुभगा कातिसंयुक्ता वहुपुत्रा च जायते ॥४६

सर्वेष्वपि हि मासेपु ब्राह्मणानुमते शुभम् ।
तस्मादवश्य[9] कर्त्तव्य पुत्रान्स्त्री सुखमृच्छति ॥४७

या स्नानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्ध,
श्रद्धान्विता द्विजवरानुमते नताङ्गी ।
दोपान्निहत्य सकलान् स्वशरीरभाजो
भर्त्तु प्रिया भवति 'सा मुरते सवत्सा'[10] ॥४८

इति श्रीकल्याणेन कृते वालतन्त्रे गर्भाधानकालरुद्रस्नानकथनं नाम चतुर्थः पटलः॥

---

१. घ सर्वोपधि । २. ग. घ. संधि विनिक्षिप्य । ३. घ. स्तु पूजिते । ४. ग. घ विशेपितः । ५. ग. स्नापकीय । ६. घ पूजयेत् । ७. ग णोवस्त्र । ८. ख. नाधिकापि ९ ख. ० दैवश्यं । १०. घ. पुत्रसुखान्विता च ।

पञ्चमः पटलः

गर्भस्थितस्य वालस्य रक्षार्थं कथ्यते बलिः ।
औषधानि विचित्राणि कथ्यन्ते[1] मन्त्रजापकः ॥१

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे तु[2] प्रथमे बलि· ।
प्रजापतिं समुद्दिश्य देयो मत्रेण मत्रिणा ॥२

श्वेतवस्त्रं पायस च गवां क्षीर[3] तथा घृतम् ।
श्वेतवस्त्र चन्दन च सरत्न चागुलीयकम् ॥३

पूर्णकुम्भो हेमयुक्तो धूपदीपावय[4] बलिः ।
स्थाने गवां दोहनस्य निक्षिप्तव्य प्रशान्तये ॥४

तत्र मन्त्रः—

[5]एह्येहि भगवन् ब्रह्मन् प्रजाकर्त्त[6] प्रजापते ।
पिष्ट्वा[7] क्षीरेण संपेयमौषध समुदाहृते[8] ॥५

यदि चेत्प्रथमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
नीलोत्पल सनाल च शृगाटककसेरुकम् ॥६

शीततोयेन सपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ।
एव न पतते गर्भ.[9] शूल चैव विनश्यति ॥७

मञ्जिष्ठं चन्दन कुष्ठ तगर समभागकम् ।
शीतोदकेन सपिष्य क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥८

॥ इति प्रथममास गर्भिणीरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं द्वितीये मासि वै बलि ।
समुद्दिश्याश्विनौ चैव[10] देयो[11] मत्रेण मत्रिणा ॥९

दध्यन्न[12] पायस लाजा पिन्याककुसुमानि[13] च ।
गन्धश्च[14] धूपदीपैश्च वस्त्र पूर्णो[15] घटस्तथा ॥१०

---

१ ग. वाच्यते । २. ख षु । ३. ख. गव्यं । ४. ख. चयं । ५ घ. हरेरिराह्येहि । घ ६ प्रजाकृता । ७ घ घृष्ट्वा । ८ घ समुदाहृतं । ९. घ गर्भ । १० घ. चाभि । ११. घ. देवौ । १२. घ. दध्यान्न । १३. घ कपित्था० । १४. घ. गन्धैश्च । १५. घ. पूर्णं ।

हेम्ना युतोऽथ शालाया[1] समीपे निक्षिपेद्बलिम् ।
[2]गोदोहस्थानके न्यस्य मत्रमेत पठेत्सुधीः ॥११

मत्रः—

भगवन्तौ प्रभवन्तौ[3] प्रगृहीत बलि त्विमम् ।
विश्वरूपौ[4] देवभिषजौ रक्षेता[5] गर्भिणी युवाम् ॥१२

यदि च द्वितीये मासे[6] गर्भे[7] भवति वेदना ।
तगर कुकुम बिल्व कर्पूरेण समन्वितम् ॥१३

अजाक्षीरेण सपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ।
एव न पतते गर्भ शूल चैव विनश्यति ॥१४

शालूकनीलोत्पलके कसेरुश्रृगवेरकम् ।
स[8] सपिष्ट्वोदकेनैव क्षीरेण सहसा पिवेत् ॥१५

श्रृगाटक[9] कसेरु च जीरक बिल्वपत्रकम् ।
खर्जूरं शीततोयेन पिष्ट्वा[10] क्षीरेण सपिवेत् ॥१६

॥ इति द्वितीयमासे गर्भिणीरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थे[11] बलिर्मासे तृतीयके
रुद्रानेकादशोद्दिश्य देयो मंत्रेण मत्रिणा ॥१७

घृतमन्न च लाजाश्च ध्वजा श्वेता च[12] चन्दनम्
श्वेतपुष्पाणि वस्त्र[13] च श्वेत धूप[14] प्रदापयेत् ॥१८

श्वेतपकजयुक्तश्च पूर्णकुभ सकाचन[15] ।
इत्येतत्प्रथमस्थाने ईशान्यां दिशि निक्षिपेत् ॥१९

अथ मंत्र :—

महादेवः शिवो रुद्र शङ्करो[16]नीललोहित ।
ईशानो विजयो भीमो देवदेवो जयोद्भव[17] ॥२०

---

१. घ. सिलाया। २ घ. गेहोहृत्। ३. घ. प्रभावन्तौ। ४. घ. सुरूपौ। ५. क रिरक्षेतां। ६. घ. मासि। ७ घ गर्भ। ८, घ. सम। ९ क. श्रृंगात्रक। १० घ अजा। ११. घ. रक्षायं। १२. घ. श्वेताय। १३. घ. वस्त्रां। १४. घ. धूप। १५ घ फाचने। १६. घ. निल०। १७. घ. विजद्भवः।

कपालीशश्च कथ्यंते तथैकादशमूर्त्तयः ।
रुद्रा एकादश प्रोक्ता प्रगृह्णीत बलिं त्विमम्[1] ॥२१

युष्माकं तेजसा[2] वृद्धया नित्यं रक्षति गर्भिणीम् ।
यूय मन्त्रैकबुद्धया हि नित्य रक्षति गर्भिणीम् ॥२२

पद्मक चन्दनोशीरं तगर समभागकम् ।
शीततोयेन संपिष्ट्वा अजाक्षीरेण पाययेत्॥२३[3]

॥ इति तृतीये मासे गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थ बलिमसि[4] चतुर्थके
उद्दिश्य द्वादशादित्यान् ऐशान्यां दिशि यत्नतः ॥२४

आरक्तान्नं गुडान्न च रक्तगधध्वजौ तथा
रक्तपुष्पैर्धूपदीपै. रक्तवस्त्र सकाचनम्[5] ॥२५

'कलश सलिलापूर्ण[6]' क्षिपेच्चैव जलाशये ।
वक्ष्यमारोन मन्त्रेण मन्त्र हेतिममन्त्रितम् ॥२६

मन्त्र —

यमो विवस्वास्त्वष्टावस्वृ[7] (वसव) सविता भृग ।
विष्णुस्तथा मधुर्मित्र खगः सूर्योऽथ तापन. ॥२७

आदित्या द्वादश प्रोक्ता प्रगृह्णन्तु वलिं त्विमम्
युष्माक तेजसा वृद्धया नित्य रक्षतु[8] गर्भिणीम् ॥२८

शृंगाटक[9] चेलापत्र[10] द्राक्षा च दाडिमोद्भवम्[11]
'बीजं च कदलीमूल तथा वै तालपद्मकम्'[12] ॥२९

शीततोयेन सपिष्य वस्तिक्षीरेण सपिबेत् ।
एव न पतते गर्भ शूल चैव विनश्यति ॥३०

॥ इति चतुर्थे मासे [गर्भरक्षा] ॥

---

१ घ. हिम । २ घ तेजसां । ३ घ 'उशीरं पद्मक मुस्ता चन्दनं पद्मनालकम् । शीततोयेन सपिष्य क्षीरेणालोड्य पाययेत् ॥' ४ घ वलि मासे । ५ घ सकाचनं । ६. घ. कलश सलिलापूर्णः । ७. घ वैवस्वानस्त्वष्टावस्तुश्च । ८ घ रक्षति । ९ घ शृंगाटं । १० ग. केवलं पत्रं । ११. घ द्राक्षादाडिमोद्भव. । १२ ग बीज कदलिकन्दं तु शीततोयेन पेषयेत् । अजाक्षीरेण सलोड्य पिबेन्नारी सुखाप्तये । उशीर कदलीमूलं तथा वै पद्मनालकम् ।

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं पंचमे मासि वै बलिः[1] ।
विनायक[2] समुद्दिश्य देयं[3] सततचेतसा[4] ॥३१

विनायक गोमयेन कुर्यात्[5] पिष्टेन वा पुनः ।
चतुरस्रे शुभे लिप्ते स्थापयेत्त गणाधिपम् ॥३२

अभ्यर्च्य गधपुष्पाद्यैर्वलि तत्पुरतः क्षिपेत् ।
अन्न पक्व तथाऽपक्व मासं पक्वमपक्वकम् ॥३३

पायसं मधुक द्राक्षागुडक्षीरफलानिच ।
कदलीफलपिण्डालुमधूकानि च मूलकम् ॥३४

परूष नालिकेरं च कंदमूलानि सर्षपाः ।
सर्वधान्यानि लाजाश्च सूपश्च[6] तिलपिष्टकम् ॥३५

इक्षुवत्स्तरसश्चैव[7] मध्वा पैष्टी[8] गुडोद्भवा ।
यस्य यानि निषिद्धानि तानि त्यज्य बलि हरेत् ॥३६

मत्स्यास्तत्र समानेया सहकारजले[9] क्षिपेत् ।
अथवान्यस्य वृक्षस्य[10] मूलमन्त्रेण[11] मन्त्रित.[12] ॥३७

मन्त्र.—

एकदन्तोऽम्बिकापुत्र[13] त्रिनेत्रो गणनायक ।
रक्ताम्बरधरः श्रीमान् रक्तमालानुलेपन.[14] ॥३८

विनायको गणाध्यक्षः शिवपुत्रो महावल ।
प्रगृह्णीष्व वलि चेमां सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥३९

बलिप्रदायक मर्त्यमायुषा चापि वर्द्धय ।
अलक्ष्मी चामयं पापं ग्रहविघ्नविनाशनम् ॥४०

---

१. घ वलिम् । २. घ. विनायक । ३. घ देयः । ४. घ सम्पन्नचेतस' । ५ घ. नार्या । ६ घ पूपश्च । ७. क. इषुवत्स्तरसचैव । ८ घ. माध्वि । ९ घ. ० रसे । १० घ. वृषस्य । ११. घ. मूले मन्त्रेण । १२ घ. मन्त्रवित् । १३. क. ०विना पुत्र । १४. घ. ० रक्तमाल्यानु० ।

वक्रतुण्ड महावीर्य महाभाग महाबल ।
शिरसा त्वभिवन्देऽहं सापत्या रक्ष गर्भिणीम् ॥४१

अथ चेतपचमे मासि गर्भे भवति वेदना ।
नीलोत्पल च किजल्कं[1] पद्मकेशरसंयुतम् ॥४२

अजाक्षीरेण सपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ।
एवं न पतते गर्भं शूलं चैव विनश्यति ॥४३

नीलोत्पलस्य[2] मूलं तु काकोलि च[3] सनालकम् ।
शीततोयेन संपिष्य क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥४४

पुनर्नवासर्षपाश्च बदरीबीजमाहरेत् ।
छागोदुग्ध[4] समं पिष्य अजाक्षीरेण सम्पिबेत् ॥४५

॥ इति पंचमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं षष्ठे मासि तथा बलि ।
वसूनष्टौ[5] समुद्दिश्य देयो मत्रेण मत्रिणा ॥४६

घृतान्न च हरिद्रान्नं खेलालायाश्च[7] पायसम् ।
पीतवर्णप्रसूनानि तथा नोलोत्पलानि च ॥४७

सकाचन पूर्णकुम्भं सद्यो नद्यास्तटे क्षिपेत् ।
वक्ष्यमाणेन मत्रेण सावधानो भवेत्सुधी ॥४८

मन्त्रः—

प्रवासः पावक.[8] सोमः प्रत्यूष पावकोऽनल ।
धरो ध्रुव इति ह्येते वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः । ॥४९

'अवटस्तु पुर्म्बलि चेम'[10] नित्यं रक्षतु गर्भिणीम् ।
[11]वृद्धैलामृद्धिकातिवृदुत्पल केशरं पिवेत् ॥५०

---

१ घ. मृनालं च । २ घ. मीलोत्पलं । ३. घ. फांकोलो । ४ घ. सवालुकम् । ५. घ छाग० । ६ घ. वसुनष्टं । ७. घ. खंडो लाजाश्च । ८. क. पावव. । ९. घ. वसवष्टो । १० घ. प्रगृह्णन्तु बलि चेमं । ११. घ. बला च मृद्विका० ।

पिप्पलीबीजपूरं[1] तु उत्पल च[2] सकेशरम् ।
शीततोयेन सपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥५१

निम्बपत्र[3] च हिंगु च महिषीशृङ्गसर्षपा ।
कपिवृष्टि धूपक च[4] दद्यात् पश्चान्महौषधम् ॥५२

गजपिप्पलिकं चैव नागरं बीजमेव च ।
भारगी जीरके द्वे च पद्माक्ष[5] रक्तचन्दनम् ॥५३

वचां छागलदुग्धेन पिबेन्नारी सुखाप्तये ।।
एव न पतते गर्भं शूलं चैव विनश्यति ॥५४

॥ इति षष्ठे मासे गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं सप्तमे मासि वै बलि. ।
स्कंधो रेतो न दातव्य[6] पूर्वोक्तविधिनैव हि ॥५५

मन्त्रः—

स्कद षण्मुख देवेश शिवप्रीतिविवर्द्धनात् ।
प्रगृह्णीष्व[7] बलिं चेम सापत्या रक्ष गर्भिणीम् ॥५६

'कपित्थक प्रवाल च लाजाश्चैव शर्कान्विता'[8] ।
पथ्योदकेन[9] दातव्य गर्भिणीसुखहेतवे[10] ॥५७

कपित्थं शालुक लाजा सरक्ता तोयपेषिता[11] ।
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भिणीसुखहेतवे ॥५८

अश्वत्थवटमूलेन भृंगराजस्तथैव च ।
सूर्यभक्त्या पुनर्नव्या रक्तचन्दनमेव च ॥५९

शीततोयेन[12] सपिष्य छागदुग्धेन सम्पिबेत् ।
एवं[13] न पतते गर्भं[14] तस्या शूल विनश्यति ॥६०

॥ इति सप्तमे मासि गर्भरक्षा ॥

---

१. घ ०बीजमूल २ घ. तु। ३ क निवपुत्र। ४. तु। ५ घ एप्मक। ६. घ स्कंधाय च। ७. प्रगृहं। ८. घ. कपित्थकप्रिय लाजाश्चक्रा दलसमन्विता। ९. घ पयोदकेन। १०. घ. गर्भासुखसहेतवे। ११. घ. पेष्टिता। १२. घ. अजादुग्धेन। १३. पुत्रं। १४. घ. गर्भं।

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं वलिमसेऽपि[1] चाष्टमे
दुर्गामुद्दिश्य दातव्य.[2] सुखं भवति नान्यथा ॥६१

पायसं शर्करा लाजास्तृणधान्योदने[3] घृतम्
अपूपा: कृशराश्चैव माहिष दधि मूलकम् ॥६२

मापा निष्पावक. कन्दः श्यामानि कुसुमानि च ।
नीलोत्पलानि च तथा पूर्णकुम्भ सकांचन· ॥६३

वलि क्षिपेन्नदीतीरे मन्त्रेणानेन सयत[4]
पवने वा क्षिपेन् मन्त्री सुख भवति नान्यथा ॥६४

मन्त्र —

कात्यायनी महादेवी ज्येष्ठे[5] निद्ये निशाप्रिये ।
दुर्गादेवी महाकाली सिंहशार्दूलवाहिनी[6] ॥६५

धनु खड्गधरे देवि दुष्टदैत्यविनाशिनि[7]
नदीशैलप्रिये देवी कुमारी सुभगे शिवे ॥६६

अष्टहस्ते चतुर्वक्त्रे पिंगले शुभनासिके ।
प्रगृह्णीष्व वलि चेम सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥६७

पद्मक हस्तपिप्पल्य उत्पल धान्यक तथा ।
शीततोयेन सपिष्ट्वा क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥६८

पुनर्नवा शृगाटक विल्वपत्र कसेरुकम्
अर्जुनफल पद्माक्षं रक्तचन्दनमेव च ॥६९

छागदुग्धसम पेय दिनानि सप्तक तथा
एव न पतते गर्भ शूल चैव विनश्यति ॥७०

॥ इत्यष्टमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासेऽपि नवमे बलिः
देवमातर उद्दिश्य सुख भवति नान्यथा ॥७१

---

१. घ. बलि मासेपि चाष्टमे । २ घ दातव्यं । ३. घ. धान्योदनो । ४. घ. संयुत. । ५. क. ज्ये । ६ घ वाहने । ७ घ. ०विनाशनं ।

दध्यन्नं दधि मुद्गान्नं लाजाश्च कृशरास्तथा ।
श्वेतपकजगर्धौ च श्वेतानि कुसुमानि च ॥७२

धूपो वस्त्र हिरण्येन फलपूर्णघट[1]स्तथा ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बलिर्देय·[2] सुखाप्तये ॥७३

मंत्र· —

प्रगृह्णीत वलि चेम पूय देवाश्च मातर[3] ।
यूय रक्षन्तु[4] सतुष्टाः सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥७४

एरण्डमूल काकोली पलाशबीजक तथा[5] ।
पिष्ट्वा जलेन सपेयः जीर्णान्नं भक्षयेत्सुधा[6] ॥७५

पलाशबीज काकोली चित्रमूलेन सयुतम्[7] ।
उशीरमुदके पिष्य जीर्णान्न चैव भोजयेत् ॥७६

नागर ब्रह्मपत्रं च एला चैव विडगकम् ।
जीरक गजपिप्पल्या छागदुग्धसम पिबेत्[8] ॥७७

॥ इति नवमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासेऽथ दशमे वलि[9] ।
उद्दिश्य निऋति[10] देवी देयो मत्रेण मत्रिणा ॥७८

पक्वान्न[11] कृशरा लाजा· पक्वापक्वाश्च मत्सकाः ।
पक्वापक्व च पलल सुरा चेक्षुरसस्तथा ॥७९

कृष्णा वस्त्रं कृष्णगधं कृष्णानि कुसुमानिच ।
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ॥८० ॥

निक्षिपेद्दक्षिणस्यां वै निशि नीलोत्पलावृत· ।

मंत्रः — पितृदे पितृज्येष्ठे महादेवि महाबले ॥८१

---

१. घ घटै । २. घ. ०र्देये । ३. घ. मातरं । ४ क. रक्षतु । ५. घ पालासविजक तथा । ६ घ मुधी । ७ घ. चित्रकमूलसंयुत । ८ घ दुग्ध । ९. घ. च । १०. घ नैऋति । ११. घ. पकान्न ।

प्रेतासने[1] निशावाते[2] नैऋते शोणितप्रिये ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं सापत्या रक्ष गर्भिणीम् ॥८२

शर्करा चोत्पलं चैव मधुकं मुद्गमेव च ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥८३

मधुकं पद्मकं चैव उत्पलं च सनालकम् ।
शीततोयेन सपिष्टा[3] क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥८४

नागरं वचशुंठी च तगरं कुंकुमं तथा ।
गोरोचना[4] च गोरम्भा अजाक्षीरेण पाययेत् ॥८५

॥ इति दशमे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे[5] चैकादशे बलिं ।
वासुदेवं समुद्दिश्य 'देयश्चायं विधिः स्मृतः'[6] ॥८६

पायसापूपमिष्टं च[7] गुंजा लाजाश्च सक्तवः ।
श्यामध्वजा श्यामगंधा श्यामानि कुसुमानि च ॥८७

धूपदीपैः[8] पूर्णकुंभः नीलोत्पलसकांचनः ।
अश्वत्थस्य मूले वा[9] वासुदेवालये तथा ॥८८

निक्षिपेत्प्रयतो भूत्वा तत्राशु[10] मंत्रमुच्चरेत् ॥८९

पाञ्चजन्यप्रभाव्यक्तः[11] कौस्तुभोद्योतभास्करः ।
प्रगृण्हीष्व बलिं चेमं सापत्यां रक्ष गर्भिणीम् ॥९०

पद्मोत्पलं च मधुकं नालकेनापि[12] संयुतम् ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥९१

कर्कटश्रृंगी[13] त्रिफला त्रिकटुश्च पुनर्नवा ।
नागरं भृंगराजं वा[14] अजादुग्धसमं पिबेत् ॥९२

---

१. क प्रेतासुखे । २. घ. दिशावासे । ३. घ. संपिष्य । ४. क. गोरूचना । ५ घ मासे । ६. घ देयो बलि विधानतः । ७. घ. पयसं पूपपिष्टं च । ८ घ. ०दीपौ । ९ घ. तु । १०. घ. तत्रामु । ११. क ०प्रताव्यक्तः । १२. घ. नालिकेनापि । १३. घ. कर्कटी । १४. घ. नागरं भृंगरारंभा ।

मञ्जिष्ठं चन्दनोशीरं तगरं समभागकम् ।
शृंगाटक कसेरुञ्च[1] अजादुग्धेन संपिबेत् ॥९३

॥ इति एकादशे मासि गर्भरक्षा ॥

गर्भिणीगर्भरक्षार्थं मासे वै द्वादशे बलिम् ।
एकादशोक्तविधिना देयो मंत्रेण मंत्रिणा ॥९४
पद्मशृंगाटकं चैव उत्पलं च सनालकम् ।
शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणालोड्य तत्पिबेत् ॥९५

॥ इति द्वादशे मासि गर्भरक्षा ॥

॥ इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे गर्भिणीगर्भरक्षाकथनं नाम पंचम पटलः ॥

षष्ठः पटलः

अतः परं[2] प्रवक्ष्यामि सुखप्रसवसिद्धये ।
स्त्रीणां सुखाय कर्त्तव्या उपाया अतिगोपिता ॥१
करंकीभूतगोमूर्द्धा सूतिकाभवनोपरि ।
तत्कालनिहित भा(ना)र्य्याः सुखप्रसवकारकम् ॥२
पत्रं करंजबीजानि अजाक्षीरेण पाचयेत् ।
तैलेन सह संयोज्य योनिलेपात्प्रशान्तये[3] ॥३

लेपनमंत्र.—

हिमवदुत्तरे पार्श्वे[4] शबरी नाम यक्षिणी ।
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या[5] भवतु[6] गर्भिणी स्वाहा ॥४
एरण्डस्य वने काको गंगातीरमुपस्थितः ।
द्रुतः[7] पिबति पानीयं विशल्या भवतु गुर्विणी ॥५
अनेन मंत्रेण जल तैलं च मंत्रितं कष्टी च्छुटै ।
तत्काले कटिकामूलमुत्तरस्यां दिशि स्थितम् ॥६

---

१ घ. गलो निव । २ घ तत्परं । ३ घ योनिं लिंपेत्प्रसूतये । ४. घ. हिमवंतः उत्तरे पार्श्वे । ५. क विशाल्या । ६ घ. भव । ७. घ प्रातः ।

उत्पाट्य चैव हस्तेन जलेन सह पेषयेत् ।
योनौ प्रलेपयेन्नारी सुखं सूते न संशयः ॥७

मूलं धत्तूरकस्यैव गृहीत्वा सूर्यसन्मुखम्[1] ।
धत्ते शिरसि या नारी सुखं सूते न संशयः ॥८

पश्चिमाभिमुखो मन्त्री गुंजामूलं समुद्धरेत् ।
कटौ बद्ध्वा सुखं सूते कामिनी नात्र संशयः ॥९

अपामार्गस्य मूलं तु तत्कालोत्पाटयेत्सुधीः ।
पूर्वाभिमुखः[2] 'पश्चादुदरेऽपि प्रलेपयेत्'[3] ॥१०

योनौ सुखं प्रसूते च[4] सा नारी रहितवेदना ।
सर्पकंचुकमादाय भस्म कृत्वा विधानवित् ॥११

मधुना सह संयोज्य[5] अंजनेन प्रसूयते ।
श्वेतायाः शरपुंखाया मूलं गृह्य विधानवित् ॥१२

कटौ बद्ध्वा सुखं सूते नारी नात्र विलंबितं[6] ।
गुग्गुलु[7] सर्प्पनिर्मोकं चूर्ण्यं[8] धूपं प्रदापयेत् ॥१३
योनौ सा सुषुवे नारी वेदनारहिता सती ।
इन्द्रवारुणिकामूलं[9] निक्षिपेद्योनिमध्यतः[10] ॥१४
तेन सा सुषुवे नारी शीघ्रं चैव न संशयः ।
मूलं चैव समाहृत्य कलिहार्या प्रयत्नतः ॥१५
संपिष्य योनिं संलिप्य सुखं सूते तु गर्भिणी ।
पुष्पार्कमूलमाहृत्य कनकस्य विधानतः ॥१६
कटौ बद्ध्वा सुखं सूते गर्भिणी नात्र संशयः ।
सेफालीपत्रकं मूलं निर्गुण्डीपत्रकं तु वा[11] ॥१७
जलेन सह संपिष्य[12] पिबेत्प्रसवसिद्धये
वृषस्य मूलं हिमतोयपिष्टं रसोऽथवा पर्पटपत्रजातः ।
नाभेरधो लेपनतोऽङ्गनानां सुखेन गर्भप्रसवं[13] करोति ॥१८

---

१. घ. गृहीत्वार्थं च सन्मुखं । २. घ. संमुखः । ३. पश्चाद् द्वन्दकेपिस्य लेपयेत् । ४. घ. सा । ५. घ. सपिष्ट्वा । ६. घ. विलंबित । ७. घ. गुग्गुलं । ८. घ. चूर्णं । ९. क. मूल । १०. घ. निक्षिपे योनि० । ११. घ. त्वचि । १२. घ. संपिष्ट्वा । १३. घ. ०गर्भं ।

लांगल्या· परिलेपः कांजिकयोगेन काकमाच्या वा ।
नाभौ[1] सहसा कुरुते[2] गर्भप्रसव[3] न संदेह ॥१६

तैलेन पिष्टारुबुकस्य कृष्णा वचाऽथ लिप्ता खलु नाभिदेशे ।
सुखप्रसूर्ति कुरुतेंगनाना नि पीडिताना[4] बहुभिः प्रमादै ॥२०

मयूरमूलासनशिग्रुपाठा व्याघ्रीबलालांगलिकासमेता[5] ।
पिष्टारनालेन विलिप्य नाभौ सुखेन नार्य्या[6] प्रसव करोति ॥२१

शालिपर्ण्याभव मूल पिष्टं तदुलवारिणा ।
नाभिबस्तिगलालेपात्प्रसूते प्रमदासुखम् ॥२२

सर्पकंचुकनृकेशसर्षपैस्तिक्ततुम्बिकृतबधनान्वितै[7] ।
[8]धूपनात्कटुतैलसयुतैस्तत्क्षणेन युवति. प्रसूयते ॥२३

कृत्वा दशधा खड गुंजामूलं निबद्धय कटिदेशे ।
सूत्रै. सप्तभि रत[9] सुखप्रसूर्ति[10] भामिनी लभते ॥२४

मातुलिंगस्यमूलानि मधुक मधुसयुतम् ।
घृतेन सह दातव्य सुख नारी प्रसूयते ॥२५

बलाशुमत्यातिविषाबृहत्यौ पाठानिशादारुजल[11] गुडूची ।
एभि सुपिष्टै खलु गर्भिणीना तैलं विपक्व पयसा प्रशस्तम् ॥२६

अभ्यगकर्णांतटपूरणेन[12] सर्वामयाना प्रलय विधत्ते ।
गर्भस्य पुष्टि सबल शरीर[13] कृशानुवृद्धि रुचिरा रुचि च[14] ॥२७

अश्वत्थोत्तरमूल तदुलपयसा निघृष्य[15] या[16] पिबति ।
सद्यो भवति विशल्या विमूढगर्भापि नात्र सदेहः ॥२८

प्रशस्ते रक्षिते दक्षे[17] हतस्त्रीभिरलकृते ।
प्रसूता[18] सूतिकागारे रक्षामत्राभिमत्रिते[19] ॥२६

---

१ घ योनौ । २. घ. सकुरुते । ३ घ गर्भं । ४. घ प्रपीड़िताना । ५ घ. क्षमेता । ६. घ. मार्या । ७ घ क. ०वेदनान्विते । ८ घ धूपनात् कटुक० । ९ घ रंतु । १० घ ०प्रसूति । ११. घ जले । १२. घ अभ्यगकर्णंतरपूरणेन । १३ घ. सबले शरीर । १४ घ मरुचि रुचि च । १५ घ निघृष्ठ । १६ घ य । १७ घ. रक्षते दिक्षे । १८. घ. प्रसूता । १९ घ. सूतगाकारे ।

प्रणवो भुवनेशानी स्मरस्त्री रक्षयुग्मकम् ।
वन्हिजायावधिर्मंत्रः[1] प्रोक्तो दशभिरक्षरैः ॥३०
डोरकं[2] रक्तसूत्रेण[3] स्त्रीप्रमाणं तु कारयेत् ।
सप्तग्रथिसमायुक्त सप्ततंतुविनिर्मितम् ॥३०
सूतिकाभवनद्वारि बध्नीयान्मत्रमत्रित.[4] ।
रक्षामंत्रः समाख्यातः सर्वेषां हितकाम्यया ॥३१
अबला[5] रुधिरश्रावादबलाभिरुपाचरेत्[6] ।
स्नेहाभ्यगेन मतिमान् निर्वात[7] स्थानरक्षणैः ॥३२
वाष्टोका[8] मागधी 'चापि मदिरां च प्रपाययेत्'[9] ।
एव द्वित्रिदिन तज्ज्ञैः[10] कर्त्तव्या स्त्रीहिता क्रिया[11] ॥३३
यवागू पायये 'द्यस्तु यवागु वा वलादिकम्'[12] ।
सात्म्य(यं) काल च योऽपीक्ष्य त्रिरात्र भोजयेत्तथा ॥३४
यवकोलकुलत्थानां जागलस्य रसोत्तमैः ।
अदन[13] भोजयेत्सात्म्य(यं)[14] कृशा तु[15] रक्षयेत्तत ॥३५
अनेन विधिना दक्षः[16] प्रशक्ताभि सुरक्षिताम्[17] ।
दक्षाभिगर्भजननें स्त्रीभिस्ता समुपाचरेत्[18] ॥३६
कोदमेन पयसा स्नेहैः सुस्निग्धा स्नापयेत्तत ।
पथ्ययुक्तिविधानज्ञैः[19] पश्चाद्दानादि कारयेत् ॥३७

॥ इति श्रीकल्याणेन कृते बालतत्रे सुखप्रसवोपायकथनं नाम षष्टम (छठ) पटलः ॥



१. घ. ०विधिर्मंत्रः । २. घ. डोरकां । ३. घ सूत्रस्य । ४. घ. ०मत्रितं । ५. घ अवला । ६. घ ०दवलां सुमपाचरेत् । ७. घ. निर्वात । ८. घ. वार्षिका । ९ घ. वापि मदिरा मधुपाययेत् । १०. क तक्षै । ११. घ. स्त्रिस्तु हितां-क्रिया । १२ घ. क्षीरं वापि गुंवावलादिकं । १३. घ. त्रिदिनं । १४. घ साम्यं । १५. घ कृशा नु । १६ घ. दक्षा । १७. घ. प्रशस्तामिस्तु रक्षितां । १८. घ. समुच्चरेत् । १९ घ ययायुक्ति विधानेन ।

सप्तमः पटलः

अत. पर प्रवक्षामि वालरक्षां यथाक्रमम्[1] ।
प्रथमे दिवसे नाम्नी नन्दिनी क्रमते शिशुम् ॥१

तद्गृहीतस्य वालस्य· ज्वर स्यात्प्रथम ततः ।
गात्रे[2] शोषस्तथा[3] स्वेदो नाहारेच्छा[4] भृशं भवेत् ॥२

छर्दिर्मूर्च्छा च कम्पश्च शोषो दीनस्वरस्तथा ।
विधान[5] तत्र वक्ष्यामि येन मुचति नन्दिनी ॥३

कूलद्वयमृदा कुर्यात्पुत्रिकां सुमनोहराम् ।
शुक्लोदन शुक्लगन्ध तथा गधानुलेपनम् ॥४

शुक्लपुष्पाणि पचैव ध्वजाः पंच प्रदीपका ।
स्वस्तिका पंच पूर्वाह्णे पूर्वस्या दिशि सयुतः ॥५

वलिं दद्यादथो राजन् सर्षपोशीरमेवच ।
शिवनिर्माल्य[6] मार्जारनृकेशा निंवपत्रकम् ॥६

गव्यघृतेन चैतेन[7] धूपयेच्चैव वालकम् ।
एव दिनत्रय कृत्वा चतुर्थे मंत्रवारिणा ॥७

स्नापयेद्वालक पश्चाद्वाह्मण वापि भिक्षुकम् ।
क्षीरेण भोजन देय सुस्थो[8] भवति वालक[9] ॥८
स्नाने[10] च पूजने चैव वलिदाने च मार्जने ।
वक्ष्यमाणेन मत्रेण कर्त्तव्य[11] विधिना तत ॥९

मंत्र —

'प्रणवो भुवनेशानी'[12] तत्स्वाहा[13] षडक्षर ।
एव कृतस्य वालस्य सुख भवति नान्यथा ॥१०

॥ इति दिवसगृहीतवालतन्त्रे ग्रहनिवारणम् ॥

---

१. घ पदा कम । २ घ गात्र । ३ घ तवा । ४. क. आहारेच्छा । ५ घ. विधान्न । ६ घ. निर्माल्य । ७ घ गव्य घृत च तेनंव । ८. घ स्वस्थो । ९. घ वालक । १०. स्नापने । ११ घ कर्त्तव्या । १२ घ. भुवनेसनि खेतत्स्वाहा । १३ घ ॐ ह्वी स्वाहा ।

द्वितीये दिवसे बाल गृह्णाति च सनदना[1] ।
ततो भवेज्ज्वर[2] पूर्वं संकोचो[3] हस्तपादयो. ॥११
दंताद् खादति श्वसिति[4] निमीलयति चक्षुषी ।
आहारं च न गृह्णाति दिवा रात्रौ च रोदति ॥१२
अक्षिरोगं छर्दन च भवेद्धीति पुन पुनः ।
कृशत्व जायतेऽत्यत चिन्हमेतत्प्रकीर्त्तितम् ॥१३
तंदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्माथाथ[5] पुत्रिकाम् ।
त्रयोदशध्वजा देया[6] स्वस्तिका धवलोदनम् ॥१४
प्रस्यप्रमाणपिष्टेन सिद्धान्न[7] पूपकोत्सका ।
मांस चेत्येतदखिल पश्चिमाया दिशि क्षिपेत् ॥१५
पश्चिमाया च सध्यायां एवं दद्याद्दिनत्रयम् ।
धूपादि[8] मंत्रस्नानं तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥१६

॥ इति द्वितीयदिवसे बालग्रहणम् ॥

तृतीयेऽह्नि च गृह्णाति घंटाली बालकं ग्रही ।
तच्चेष्टा[9] च करोद्वेग. कासश्वासास्यशोषणम् ॥१७
गजदंता च गोदन्ता तथा केशैस्तु अञ्जनी ।
अजाक्षीरेण संपिष्य ततो बालं प्रलेपयेत् ॥१८
धूपयेन्निंबपत्राणि नखसर्षपराजिका ।
लेपतो[10] धूपितो बालः सुखं प्राप्नोति निश्चितम् ॥१९
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ।
एव कृते तु सा देवी बालक मुंचति स्फुटम् ॥२०

॥ इति तृतीये दिवसे बालग्रहहरम् ॥

---

१. घ. वसुनदना । २. घ भवज्वर । ३. घ. सकोचं । ४. घ. खादंति । ५. घ. विनार्माथाथ पुत्रिका । ६ घ दीपाः । ७. घ सिद्धाप्याश्च प्रमत्सका । ८. घ. धूपश्च । ९ घ. तेच्चेष्टा च उद्वेग । १०. घ. लेपेतो ।

चतुर्थेऽह्नि च गृह्णाति कटकोली ग्रही[1] शिशुम् ।
तच्चेष्टा रोचकोद्वेग फेणोद्गाराद्यवीक्षणम्[2] ॥२१

गजदन्ताहिनिर्मोको[3] राजिकामूल[4] लेपयेत् ।
धूपयेत्सर्पपारिष्ट[5] कैशैर्मुञ्चति सा ग्रही ॥२२

मन्त्रस्नानादिकं सर्वं बलिदानादिकं तथा ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥२३

॥ इति चतुर्थदिवसे बालग्रहहरम् ॥

पंचमेऽह्नि च हंकारी[6] ग्रही गृह्णाति बालकम् ।
तच्चेष्टा जृम्भण श्वासमुष्टिवधोद्ध्र्ववीक्षणम् ॥२४

शिलातालवचो[7]-लोध्रमेषशृङ्गै प्रलेपयेत् ।
लशुनं निम्बपत्राणि सिद्धार्थैर्धूपयेत्तत. ॥२५

एव मुञ्चति सा बालं बलिदानाद्विशेषत. ।
अवशिष्ट तु यत्सर्वं प्रथमोक्तप्रकारतः ॥२६

॥ इति पंचमदिवसे गृहीतबालग्रहहरम् ॥

षष्ठे च दिवसे नाम्नी षट्वायी[8] गृह्णते शिशुम् ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपो हासरोदनमोहनम्[9] ॥२७

कुष्टगुग्गुलुसिद्धार्थगजदंतैर्घृतान्वितै. ।
धूपयेल्लेपयेच्चापि ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥२८

॥ इति षष्ठदिवसे गृहीतबालग्रहहरम् ॥

सप्तमे दिवसे नाम्नी हिंसिका क्रमते शिशुम् ।
तच्चेष्टा जृम्भणं श्वासमुष्टिवधस्तथैव च ॥२९

मेषशृङ्ग वचोरोध्र[10] हरिताल मन.शिला ।
एतत्तु रुचिर पिष्ट्वा ततो बाल प्रलेपयेत् ॥३०

---

१ घ कार्कोली ग्रहितं । २. घ फेणोग्द्गारादिगिक्षणे । ३. घ. निर्मोक । ४. घ राजिमूल तु । ५ घ. ०सर्षपारिष्ट. । ६ घ पचमोह्न्यहंकारी । ७ घ ०वचा । ८ घ. षट्कारी । ९ घ हासा० । १०. घ वचारोध्र ।

वलिं दद्यात्तु मातॄणां ततो मुञ्चति सा ग्रही ।
मंत्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण तु ॥३१

इति सप्तमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

अष्टमे दिवसे नाम्नी भीषणी क्रमते शिशुम् ।
कासते श्वासते चैव गात्र[1] संकोचते भृशम् ॥३२
अपामार्गमुशीरं च पिप्पली चित्रकं तथा ।
अजामूत्रेण संपिष्य ततो बालं प्रलेपयेत् ॥३३
गोशृंगनखकेशैस्तु[2] धूपयेद्बालकं ततः ।
मन्त्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३४

॥ इति अष्टमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

नवमे दिवसे बाल[3] मेषा गृह्णाति निश्चितम् ।
तच्चेष्टा त्रासनोद्वेगं स्वमुष्टिद्वयखादनम् ॥३५
वचा चंदनकुष्टौ वा[4] सर्षपास्तत्र लेपयेत्[5] ।
नखवानररोमाभ्यां धूपनान्मुञ्चति ग्रही ॥३६

। इति नवमदिवसगृहीतबालग्रहहरम् ॥

दशमे दिवसे नाम्ना[6] रोदना[7] क्रमते शिशुम् ।
तच्चेष्टा कासनं चैव रोदनं मुष्टिबंधनम् ॥३७
कुष्टोग्रासर्जसिद्धार्थैर्लिपेन्निम्बेन धूपयेत् ।
मत्स्यमांससुरायुक्तो[8] बलिं निशि समाहरेत् ॥३८
अपामार्गाङ्कुरोशीरचंदनक्वाथवारिणा ।
शताभिमंत्रितं[9] कृत्वा त्रिसंध्यं परिषिचयेत् ॥३९
एवं कृते तु[10] सद्यैव बालं मुंचति सा ग्रही ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥४०

॥ इति दशमदिनगृहीतबालग्रहहरम् ॥

॥ इति कल्याणेन कृते बालतंत्रे दिनगृहीतबालग्रहहरं नाम सप्तमः पटलः ॥

---

१. क गात्रं । २ घ. ०केशस्तु । ३ नाम्नि बालं गृह्णाति । ४. घ. ०कुष्टौ च । ५ घ. सर्षपास्तत्रलेपयेत् । ६. घ. नाम्नि । ७ घ रोदनां । ८. क मच्छमांस० । ९. घ सताभि० । १० ग. नु ।

अष्टमः पटलः

अथ मासगृहीतस्य वालकस्य विमुक्तये ।
बलिं वक्ष्यामि सुखदं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥१

प्रथमे मासि गृह्णाति कुमारी नाम योगिनी ।
उद्वेगज्वरशोषादि चेष्टितं तत्र जायते ॥२

नैर्ऋतं दिशमाश्रित्य सध्याकाले बलिं हरेत् ।
[1]नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ॥३
कृत्वा पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्पधूपादिभिस्ततः[2] ।
वटकामुष्टिकायूपा[3] अग्रभक्तं गुडो दधि ॥४

चतुर्वर्णपताकाश्च प्रदीपाः पुष्पचन्दनम् ।
अपराह्णेऽथवा दद्यात् मन्त्रेणानेन मन्त्रविद् ॥५

ॐ नमो भगवते च रावणाय च बालकम् ।
मुचयुग[4] वन्हिजातमन्त्रो विंशतिवर्णकः ॥६

॥ इति प्रथममासगृहीतवालग्रहम् ॥

द्वितीये मासि गृह्णाति बालकं मुकुटा-ग्रहो[5] ।
ग्रीवानिवृत्तिनिष्पन्दो वपुषः पीतशीतताम्[6] ॥७
वक्त्रसंशोषणोद्गारा[7] रोचकानि तदाश्रयम्
क्षीरान्नकृशरायूपतिलतंदुलसंयुतम् । ८
कृष्णपुष्पांसुकालेपैस्तत्र[8] मातृबलिं हरेत् ।
कसुभं लसुनं निंब सचूर्ण्यं धूपयेत् शिशुम् ॥९

॥ इति द्वितीयमास ॥

तृतीये मासि गृह्णाति बालकं गोमुखी ग्रहो ।
तच्चेष्टा रोदनं निद्रा बहुमूत्रपुरीषकम् ॥१०

---

१ घ नदी तीरे० । २. घ ०स्तथा । ३. घ. ०पूपा । ४ घ. मुंच मुंच । ५. घ. समुवाग्रहो । ६. घ. ०शीतता । ७ घ. ०गारो । ८ घ. ०पुष्पांशुकालेपै० ।

उन्मीलयति नेत्राणि रोगान्धो[१] मधुगधवान् ।
प्रियंगुतिलकुल्माप चतु पिण्डकुमोदकै[२] ॥११
जपाकुसुमसयुक्त मध्याह्ने बलिमाहरेत्
धूपयेत्तिलसिद्धार्थैस्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१२

॥ इति तृतीयमासः ॥

चतुर्थे मासि गृह्णाति बालक पिंगला ग्रही
पय पानारुचिः स्वेद[३] भुजस्कंधास्यशोषणम्[४] ॥१३
पूतिगंधस्तु नाचेष्टा तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
न मत्र नौपध तत्र बलिं तत्र न कारयेत् ॥१४

॥ इति चतुर्थमासः ॥

पचमे मासि गृह्णाति बालक वडवा ग्रही ।
तच्चेष्टा रोचकं कासो मुखशोषणरोदने । १५
सीदन्ति सर्वगात्राणि विश्रान्त विपन(पिवते) पय[५] ।
ओदन पोलिकाशाक मत्स्यमांसादि दापयेत्[६] ॥१६

॥ इति पंचममास ॥

षष्ठे मासे च गृह्णाति पद्मा नाम ग्रही शिशुम् ।
तच्चेष्टा रोदनं शूल स्वरभ्रंसस्तथैव च ॥१७
शिखिकुक्कुटमेषाणां मासमाषोदन सुरा ।
कुलत्थ चेति सप्रोक्त बलिना मुञ्चति ग्रही ॥१८

॥ इति षष्ठमास ॥

सप्तमे मासि गृह्णाति बालकं पूतना ग्रही ।
क्षीरं पिबति दु.खेन[७] रोदति क्षणछर्दिवान् ॥१९
कृशरा चोदन[८] मांसं मत्स्यं क्षीरं सुरासवः ।
कुल्माषास्तिलचूर्णं च गधपुष्पाणि चैव हि ॥२०

---

१. क. रोग्गंधो । २. घ ०कमोदकं. । ३. घ. चैत्यं । ४. घ भुजस्पंदास्य शोषणे । ५ घ विपते पयः । ६. घ. भक्ष्याणि लेपिकाश्चैव स्वस्तिकं पद्मकं तथा । दक्षिणा दिशिमाश्रित्य मध्यान्हे बलिमाहरेत् । ७. घ. विस्रष्टते । ८. घ. उशीरं चंदनं ।

पूर्वां दिशं[1] समाश्रित्य मध्याह्ने बलिमाहरेत् ।
अन्यत्सर्वं प्रकर्त्तव्य प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥२१

॥ इति सप्तममासः ॥

अष्टमेमासि गृह्णाति बालकं अंजिका ग्रही ।
गात्रभगो ज्वराक्षिरुक् प्रलापः छर्द्दिरेव च ॥२२
उत्तरा दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत्[2] ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥२३

॥ इति अष्टममासः ॥

नवमे मासि गृह्णाति बालकं कुंभकर्णिका ।
तच्चेष्टा रोचक छर्दिर्ज्वरपातालगधवान् ॥२४
कुल्माषपललक्षीरमत्स्यमांससमन्वितम् ।
ईशान्यां दिशि मध्यान्हे बलिमामुञ्चति ग्रही ॥२५

॥ इति नवममासः ॥

दशमे मासि गृह्णाति बालकं तापसी ग्रही ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपक्षीरद्वेषाक्षिमीलनम् ॥२६
पीतरक्तोदनायूष[3]–मत्स्यमांसमुरासवै. ।
कुल्माष तिलपिष्टा च गधपुष्पाणि चैव हि ॥२७
पिष्टघंटापताकाभ्यामुदीच्या दिशि प्राहरेत्[4] ।
मध्याह्ने समये तावत्ततो मुचति सा ग्रही ॥२८

॥ इति दशममास. ॥

एकादशे मासि नाम्नी सुग्रही ग्रहते शिशुम् ।
तया गृहीतमात्रस्तु षरदोन[5] प्रजायते ॥२९
न मन्त्र नौषध तस्य बलि तस्य न दापयेत् ।
क्रियते चेद्बलिं तत्र प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३०

॥ इति एकादशमासः ॥

---

१. क. पूर्वा । २. घ. प्रदापयत् । ३. घ. ०पुष्प(ष्ट) । ४. घ. माहरेत् । ५ घ. रोदनेन

द्वादशे मासि गृह्णाति बालकं बालिका ग्रही ।
तच्चेष्टाऽरोचक श्वासतृष्णा चैव पुन पुनः ॥३१

दध्यन्नं तिलकुल्माषमोदनानि[1] बलिं हरेत् ।
मध्याह्नसमये प्राच्यां ततो मुचति सा ग्रही ॥३२

क्षीरवृक्षकषायेण स्नापयेत्तत्प्रशान्तये ।
प्रथमोक्तप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ॥३३

॥ इति श्रीकल्याणकृते बालतन्त्रे मासेषु गृहीतबालग्रहहरं नाम अष्टमः पटलः ॥

नवमः पटलः

अथ वर्षे गृहीतस्य बालकस्य विमुक्तये ।
बलिं वक्ष्यामि सुगम येन सपाद्यते सुखम् ॥१

प्रथमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नन्दिनी ।
अरोचकाक्षिविक्षेप[2] गात्रदाहप्ररोदन[3] ॥२

पतन च सदा भूमौ चेष्टित तत्र लक्षयेत् ।
गुडान्नदधिकुल्माषपोलिकामत्स्यकासवै ॥३

तिलचूर्णाभिषेचैव(केन) प्राच्या दिशि बलिं हरेत् ।
केशगोखुरगोदतैर्धूपयेन्[4] मुञ्चति ग्रही ॥४

स्नापयेत् पंचगव्येन तिलतैलेन दीपकम् ।
पूर्वां[5] तु दिशमाश्रित्य एकरात्रि बलिं हरेत् ॥५

॥ इति प्रथमवर्षः ॥

द्वितीये वत्सरे बाल ग्रही गृह्णाति रोदनी ।
रक्तमूत्रज्वराध्मान[6]-पद्मकेसरवर्णता ॥६

स्फुरते दक्षिणं हस्तं रोदनं च पुनः पुनः ।
तिलापूपककुल्माषगुडान्नदधिमोचकै.[7] ॥७

---

१ घ. ०मोदकान्नं । २. क रोचकाक्षि० । ३. घ. ०प्ररोदनं । ४. घ. ०धूपयति । ५ क. पूर्वं । ६. घ. ०जराध्मात । ७. घ. ०मोदकैः ।

सफल स प्रतिछाद (साय) प्राच्यां दिशि वलिं हरेत् ।
[1]धूपयेत्सर्पिनिर्मोकराजिभ्या[2] मुञ्चति ग्रही ॥८

॥ इति द्वितीयवर्षः ॥

तृतीये वत्सरे वाल गृह्णाति धनदा ग्रही ।
अवेक्षणमनाहारो[3] ज्वरशोषागसादने[4] ॥९
स्फुरण वामपादस्य ज्ञातव्य[5] तत्र चेष्टितम् ।
दधिमाससुरामत्स्या गुञ्जान्नतिलपिष्टकै ॥१०
फलकस्य प्रतिमाया. सहोदीच्या वलिं हरेत् ।
पिच्छैर्मयूरसभूतैस्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥११

॥ इति तृतीववर्ष· ॥

चतुर्थे वत्सरे वाल ग्रही गृह्णाति चचला ।
चेष्टित तत्र विज्ञेय ज्वरश्वासागसादने ॥१२
तिलकृष्णान्नवासोभि· सार्द्धं[6] तत्र वलिं हरेत् ।
मेषशृगस्य धूप स्यात्ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१३

॥ इति चतुर्थवर्ष· ॥

पंचमे वत्सरे वाल ग्रही गृह्णाति नर्त्तकी ।
तद्वेजन[7] मुहुर्मूत्र[8]-श्रवण गात्रसादन ॥१४
मुखगोषणवैवर्ण्ये[9] चेष्टित तत्र लक्षयेत् ।
मत्स्यमूलकमासानि पक्वान्नकृशरापय ॥१५
पायसं च सुरामद्य·तिल चोक्त वलिं हरेत् ।
सफल सपरिच्छद[10] सप्तरात्रिं वलिं हरेत् ॥१६
केशराजिसगोदतलशुनैरपि धूपयेत् ।
त्रिसध्य सनिधानेन ततो मुञ्चति सा ग्रही ॥१७

॥ इति पचमो वर्षः ॥

---

१. घ धूपयत्० । २. घ ०रजिन्या । ३ घ अविक्षण मनोहारो । ४ घ ०शेपाग० । ५. घ दातव्यं । ६ क सार्द्ध । ७ घ उद्वेगन । ८ घ महुर्मंत्र । ९ घ मुखशोपो वंरस्ये । १० घ सु प्रतिछव ।

षष्ठे च वत्सरे बाल गृह्णाति यमुना ग्रही ।
तच्चेष्टा रोदनोद्गारदुष्टाहार-[1]विहारत ॥१८

मत्स्य मांस सकृशरं पोलिका पायस दधि ।
सुरामोदकमित्येतै.[2] प्रक्षिपेच्चत्वरे बलिम्[3] ॥१९

गोरोमखुरशृंगैश्च धूपयेन्मुञ्चति ग्रही ।
स्नानं पचदलै कार्यं सुख भवति नान्यथा ॥२०

॥ इति षष्ठ वर्षविधिः ॥

सप्तमे वत्सरे बालं ग्रही गृह्णाति नर्त्तकी ।
तया गृहीतमात्रस्तु अन्धो भवति बालक ॥२१

सीदन्ति सर्वगात्राणि मुख च परिशुष्यति ।
मूत्र च स्रवते नित्यमुद्वेग च पुन पुन ॥२२

पायस कृशरान्न च तिलपिष्ट सुरासवम् ।
पक्वान्नि मत्स्यमांसानि दधि मूल च कदकम् ॥२३

सर्षपा धूपलसुन तिलतैलेन दीपकम् ।
स्नापन पचगव्येन[4] सप्तरात्रि बलि हरेत् ॥२४

॥ इति सप्तमवर्षः ॥

अष्टमे वत्सरे बाल गृह्णाति च कुमारिका[5] ।
तया गृहीतमात्रस्तु ज्वरेण परिदह्यते[6] ॥२५

सीदन्ति सर्वगात्राणि त्रासयन्ति पुन. पुनः ।
कृशरान्नौदन[7] चैव गधमाल्यं[8] तथैव च ॥२६

मेषशृंगस्य धूपोऽत्र पूर्वस्यां दिशिमाहरेत् ।
अय सिद्धबलि[9] प्रोक्तो बालकाना सुखावहः[10] ॥२७

॥ इति अष्टमः वर्ष. ॥

१.-घ. नराहार० मिथ्याहार० । २. घ. नित्येतैः । ३. घ प्रक्षिपेच्च नरो बलिं । ४ घ. पंचगव्यंत । ५. घ. कुमारिकः । ६ घ. परिदह्यति । ७. घ. कृशरा ओदनं । ८. घ. ०माल्यां ९. क. सिद्धलिं । १०. घ. सुखावह ॥

नवमे वत्सरे वाल कलहंमा ग्रही शिशुम् ।
तया गृहीतमात्रस्तु स्याद्दाहो ज्वरिताकृश ॥२८

पोलिकायूपदध्यन्नैः पचरात्रि वलिं हरेत् ।
कुष्टोग्राराजिलसुनैर्लेपयेद्द्धि[1] धूपयेत् ॥२९

निंवभेदतरोगोम्ला वालं मुञ्चति सा ग्रही ।

॥ इति नवमवर्षः ॥

दशमे वत्सरे वाल देवदूती ग्रही स्मृता ।
गृह्णाति विलते चेष्टा नृत्यवलान धावनम्[1] ॥३०

विण्मूत्र वमन क्रीडा हसन स्वग्रहेक्षणम् ।
यामि यामीति वचन नेत्ररोगाङ्गसादनम् ॥३१

सदा पानासने श्रद्धा[2] विधुरालापन तथा ।
कोद्रवोदनकुल्माषा पोलिका दधि मोदक[3] ॥३२

रक्तान्नैं रक्तपुष्पैश्च त्रिरात्र वलिमाहरेत् ।
तिलैश्च जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं सुधीः ॥३३

॥ इति दशमवर्षविधिः ॥

सर्वं एकादशे वर्षे[4] ग्रही गृह्णाति वालिका[5] ।
कासश्वासाक्षिरोगश्च काकरवश्च तद्गुणाः ॥३४

पोलिकागुडकुल्माषशकुलीशाकमोदकैः ।
पक्वमत्स्यामिषक्षीरसयुक्त वलिमाहरेत् ॥३५

त्रिरात्र निंबसिद्धार्थैं[6] धूपयेन्मुञ्चति ग्रही ।
अनुक्तमपि यत्सर्वं[7] प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३६

॥ इति एकादशवर्षः ॥

द्वादशे वत्सरे वाल ग्रही गृह्णाति वायसी[8] ।
तच्चेष्टा वक्त्रसशोष मुखवाद्यागसादनम् ॥३७

---

१. ख नृत्तवलानव धावन । २. घ सदा पानसनाश्रद्धा । ३ घ ख. पुस्तकद्वयेऽनो विशेष मत्र –प्रणव मुञ्च मुञ्चेति वियोजय वियोजय । आगच्छ द्वितय बलिके स्वाहेति प्रकीर्त्तित । ४. घ ख. वाल । ५. घ, श्चर्कका, ख वालका, घ. कालिका । ६ ८घ. सिद्धार्थं । ७. सर्वं । ८ घ वत्सरे । ९. घ गृह्णाति वायसी गृही ।

रक्तद्रव्यैर्बलिं तत्र हरेन्मुञ्चति सा ग्रही ।
स्नापनं पंचगव्येन धूपो निंबेन सर्षपैः ॥३८

॥ इति द्वादशवर्षः ॥

वर्षे[1] त्रयोदशे बालं ग्रही गृह्णाति यक्षिणी ।
तच्चेष्टा किल हृद्रोगं ज्वरो रोदनहासनम् ॥३९

शाल्योदनसुरामांसमत्स्यकुल्माषपायसैः ।
दद्यात्सकृशरप्रोक्तैर्मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥४०

॥ इति त्रयोदशवर्षः ॥

वर्षे चतुर्दशे बालं स्वच्छदा नामतो ग्रही ।
गृह्णाति चेष्टा तत्र स्याच्छोणितश्रवणं सदा ॥४१

शूलं च नाभिदेशे स्यात्तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
श्रमस्तु व्यर्थतां याति तस्मात्तत्र न कारयेत् ॥४२

॥ इति चतुर्दशवर्षः ॥

अथ पंचदशे वर्षे गृह्णाति बालकं कपी ।
तया गृहीतमात्रस्तु भूम्यां पतति निःस्वनः ॥४३

ज्वरश्च जायते तीव्रो निद्रात्यन्तं प्रजायते ।
पायसं कृशरं मांसं कुल्माषं च सुरासवम् ॥४४

पूपकाः पोलिकाश्चैव पुष्पाणि पांडुराणि च ।
स्नापनं पञ्चगव्येन धूपनं वत्सकत्वचा ॥४५

दिनत्रय[2] प्रदोषे तु बलिं दद्याद्विचक्षणः ।
सुखं भवति तेनाशु नात्रकार्यं विचारणम्[3] ॥४६

॥ इति पंचदशवर्षः ॥

षोडशे वत्सरे बालं[4] ग्रही गृह्णाति दुर्जया ।
तच्चेष्टायासनं[5] कम्पो यास्यामीति वचो मुहुः ॥४७

---

१. घ वर्षं । २. घ. त्रये । ३. घ. विचारणाम् । ४. घ ततो । ५. घ. स्वसनं । ख० चेष्टासन ।

कुल्माषपक्कशरापूपतिलपिष्टान्नफल्गुकैः ।
दध्ना सह बलिं दद्यात्प्राच्या दिशि दिनत्रयम् ॥४८

[1]धूपयेन्नखगोशृङ्गलसुनैर्मुञ्चति ग्रही ।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन तिलतैलेन दीपकम् ॥४९

॥ इति षोडशवर्षविधिः ॥

इति श्री कल्याणेन कृते वालतन्त्रे वर्षगृहीतवालग्रहहर नाम नवमः[2] पटलः ॥

दशमः पटलः

दिने मासे च वर्षे च बालशान्ति वदाम्यहम् ।
प्रथमे दिवसे वर्षे बाल योगिनीमातृदा[3] ॥१
अथवा नदनीनाम्नी पूतनाऽऽक्रमते शिशुम् ।
तद्गृहीतबालस्य ज्वरः स्यात्प्रथम ततः ॥२
गात्रे शोषस्तथा स्वेदो नाहारेच्छा भृशं भवेत् ।
छर्दिमूर्च्छा च कम्पश्च शोषो दीनस्वरस्तथा ॥३
विधानं तस्य वक्ष्यामि येन मुञ्चति पूतना ।
नदीमृत्तिकया कुर्यात् शोभना पुत्रिकां तत ॥४
शुक्लोदनं शुक्लगव तथा गधानुलेपनम् ।
शुक्लपुष्पाणि वै पञ्च ध्वजा पच प्रदीपिका ॥५
स्वस्तिका पच पूर्वाह्णे पूर्वस्यां दिशि संयुत ।
बलि दद्यादथो राजन् सर्षपोशीरमेव च ॥६
शिवनिर्माल्यमार्जारनृकेशा निंबपत्रकम् ।
गव्य घृत चेत्यनेन धूपयेच्चैव बालकम् ॥७
एव दिनत्रय कृत्वा चतुर्थे शान्तिवारिणा ।
स्नापयेद्बालक पश्चात् ब्राह्मण चापि भिक्षुकम् ॥८
क्षीरेण भोजन देय स्वस्थो भवति बालक ।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण अष्टोत्तरशत जपेत् ॥९

---

१ ख. धूपयेनखजो० । २. घ ख नवम । ३. घ. मामृदा ।

शान्तिवारि तु तत्प्रोक्त सर्वागमविशारदैः ।
पूजाया वलिदाने च[1] [2]स्नापयेन्मत्रमुच्यते ॥१०

मंत्रः—

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कदो वैश्रवणस्तथा ।
रक्षतु त्वरित[3] बाल मुञ्च मुञ्च कुमारकम् ॥११

॥ इति प्रथमदिवसमासवर्षगृहीतबालग्रहहरणविधि ॥

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे पातु सुनदना[4] ।
गृह्णाति पूतना बाल योगिनी स्तनदायिका[5] ॥१२
ततो भवेज्ज्वर· पूर्व संकोच हस्तपादयो ।
दतान् खादति[6] नियत निमीलयति चक्षुपी ॥१३
आहारं च न गृह्णाति दिवारात्र च रोदति ।
अक्षिरोग छर्दन[7] च भवेद्भीति·[8] पुन· पुन· ॥१४
कृशत्व जायतेऽत्यत चिह्नमेतत्प्रकीर्तितम् ।
तदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्मायाथ पुत्रिकाम् ॥१५
त्रयोदश ध्वजा दीपा· स्वस्तिका धवलोदनम्[9] ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन सिद्धापूपाश्च मस्तकाः[10] ॥१६
मांसं चेत्येतद खल पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
पश्चिमायां च सध्यायामेव दद्याद्दिनत्रयम् ॥१७
धूपोऽय मत्रस्था(स्ना)न तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ।

मंत्र·—

प्रणवो हृदये चामुण्डे भगवति विद्युच्च[11] जिह्वे हा द्वितय ही[12]
च अपर ही तु[13] चैव दुष्टग्रहा हु हुं वषे(दे)त् ॥१८
गच्छन्तु यात्रान्यस्थाने[14] रुद्रो ज्ञापयति[15] स्वाहा ।
सर्वकार्येपु मत्रोऽय सुखद[16] समुदाहृत· ॥१९

॥ इति द्वितीयदिवसमासवर्षेषु बालग्रहणम् ॥

---

१. घ. बलिदान च । २. घ. स्नापने । ३. क. त्वरि । ४. घ. हायने वस्तु नन्धनम् । ५. घ. स्तनदापि वा । ६. वादति । ७. घ. छर्द्दिनं । ८ घ. भवेद्भीतं । ९. घ. धवलोदनम् । १०. घ. मत्स्यकाः । ११. घ. त्र । १२. घ. हां. । १३. घ. त्व । १४. घ. न्यतः । १५ घ. जापयेति च । १६. घ. सर्वदा ।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति पूतना[1] ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिकां रचयेत्तत ॥२०
रक्तोदन ध्वजा रक्ता स्वस्तिको रक्तमेव च ।
रक्तपुष्प रक्तगन्ध तथा रक्तानुलेपनम् ॥२१
पश्चिमाया च संध्याया[2]-मुदीच्या निक्षिपेद्वलिम्[3] ।
प्रथमोक्तप्रकारेण स्नान धूप[4] समाचरेत् ॥२२
मन्त्र — प्रणवो हृदय चामुंडे[5] भगवति विद्युज्जिह्वे ।
हां हां हूं च [6]मुञ्च मुञ्च रक्षा कुरु कुरु ॥२३
वलिं गृह्णयुग स्वाहा पचत्रिंशल्लिपिर्मत[7] ।

॥ इति तृतीयदिवसमासवर्षेषु बालग्रहहरम् ॥

चतुर्थेऽह्निमवाप्नोति वर्षे गृह्णाति बालकम्[8] ।
मुख मण्डलिकानाम्नी पूतना[9] नाम एव च ॥२४
गात्रभगोन्नतिर्मूर्ध्नोश्चाल्प चाक्षिमीलनम् ।
विवर्ण्यं[10] श्यामता श्वास कासोऽरुचिरनिद्रता[11] ॥२५
तिलपिष्टमयी कृत्वा पुत्रिका विल्वकटकै. ।
अष्टागैरेपयेत् श्वेतपुष्प शुक्लध्वजार्जुन ॥२६
[12]स्वस्तिको वर्द्धयेत् प्रस्थभक्त तावदपूपक. ।
त्रिसध्य पश्चिमायां तु वलिं दद्यात्प्रयत्नत. ॥२७
अर्द्धप्रस्थमितास्तत्र पोलिका सप्रकीर्त्तिता.[13] ।
गोशृग लसुनं सर्प्यनिर्मोकी निंवपत्रकम् ॥२८
मनुष्यकेशमार्जाररोमाण्याज्य च गोस्तथा ।
एतैश्च धूपयेदेव दिने सन्ध्यात्रये दिनम्[14] ॥२९
मत्रस्नानादिकं सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥३०

॥ इति चतुर्थदिवसमासवर्षेषु बालग्रहहरम् ॥

पचमे दिवसे मासे वर्षे चैव विडालिका ।
हिक्का श्वास च[15] शूल[16] च गात्रभगोऽरुचिस्तथा ॥३१

---

१ घ. पुस्तकेऽस्त परमयमंश -गात्रभग प्रलापश्च कपज्वर तथारुचि. । निमीलन नयनयो रोमांचो वमनं तथा । २. क. सघ्या । ३ निक्षिद्वलिण । ४. घ धूप । ५ घ चामुण्डेन । ६. मुड । ७ घ व्रन्निर्मत । ८ घ चतुर्थेन्हि दिवसे मासे) पु वांयाति वर्षे गृह्णाति बालकं । ९. घ पूतना चैव योगिनी । १०. घ. विवर्णं । ११. क. रुचिरतोगितम् । १२ घ स्वस्तिकोर्व्वं प्रस्था । १३ ग स प्रवृत्तिन, घ रोमान्याज्यं । १४. घ. दिवम् । १५ घ. श्वासच । १६ घ. मूर्च्छा ।

[1]कृतस्तत्र विशेषेण भवत्येव न संशयः ।
तदुलप्रस्थपिष्टेन विनिर्माययाथ[2] पुत्रिकाम् ॥३२

शुक्लोदनं ध्वजाः पच स्वस्तिका पच चोज्वलाः ।
पच प्रदीपाः शुक्लानि कुसमानि च चन्दनम्[3] ॥३३

अपराह्णे वृक्षमूले पश्चिमायां दिशि क्षिपेत् ।
चतुर्थोक्तप्रकारेण धूपो देय. प्रयत्नत. ॥३४

मन्त्रः— ॐभगवतिमुञ्चार्य[4] ह्रा ह्री ह्रुँ फँ ततः परम् ।
च मुच रक्षां कुरु कुरु बलिं गृह्ण गृह्ण च ॥३५

अस्त ठद्वितय तु चामुण्डेश्वर चडिके ।
ठः ठ. स्वाहा समाख्यातो मंत्रो बलिनिवेदने[4] ॥३६

॥ इ पं दि मा वर्षेषु वा ग. हम् ॥

पष्ठे तु दिवसे मासे वर्षे पद्वारिकागृहीत्[5] ।
तच्चेष्टा गात्रविक्षेपो हासरोदनमोहनम् ॥३७

कुष्टगुग्गुलुसिद्धार्थ[6]–गजदंतंघृतप्लुतैः ।
धूपयेत् लेपयेच्चापि ततो मुचति सा ग्रही ॥३८

बलिदानादिक सर्वं प्रथमोक्तक्रमेण वै ।
एव कृतेन विधिना बालकः सुखतां व्रजेत् ॥३९

॥ इति ष० दि० मा० व० वा० ग्र० हरम् ॥

सप्तमे दिवसे मासे वप चैव तु कालिका ।
तत्रापि चेष्टा द्रष्टव्या छर्दिरोचककम्पनम् ॥४०

कासश्वासो[7] च विज्ञेयौ तत्र नास्ति प्रतिक्रिया ।
एवं सति तु कर्त्तव्यं प्रथमोक्तक्रमेण वै ॥४१

॥ इति स० दि० मा० व० वा० ग्र० हरम् ॥

---

१ घ ज्वर । २ क. निर्मायाक्ष । ३ घ. चन्दनै. । ४-४ घ ह्री ह्रीं ह्रुँ मु ततः पर मुंच मुच रक्षा २ कुरु २ बलिं गृह्ण २ च, अस्त उठित द्वितयं चामुण्डे सवरि चडिके ततः स्वाहा समार्क्षतो मंत्रो बलिनिवेदने । ५. घ. वंटकारिकागृहीत् । ६ घ सिद्धार्थं । ७. घ कासश्वासंश्च ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति कामिनी ।
तया गृहीतमात्रस्तु ज्वरस्तापमय भवेत् ॥४२॥
आहार च न गृह्णाति[1] मुखं च परिशुष्यति ।
कूलद्वय मृदा कृत्वा पुत्रिका सुमनोहराम् ॥४ ॥
गोधूमान्न मसूरान्न शाक च पलल तथा ।
ध्वजा. पञ्च समाख्याता दीपका पच पोलिकाः ॥४४।
गुग्गुलेन च सधूप्य[2] रक्तचन्दनपुष्पकैः ।
पूजयेद्यत्नवान् मत्री वक्ष्यमाणेन मत्रिणा ॥४५॥
मत्रस्नानविशेषस्तु प्रथमोक्तक्रमेण वै ।
एव कृते शिशूना वै सुख चैव प्रजायते ॥४६ ।

॥ इति अष्ट० दि मा० व० बालग्रहहरम् ॥

नवमे दिवसे मासे वर्षे नाम्नी तु बालकम् ।
गृह्णाति मदना चैव तच्चेष्टां च वदाम्यहम् ।४७॥
ज्वरः छर्दिघृणाध्मान कास. श्वासश्च तृट् तथा ।
गात्रभग च शूल च चिह्नान्येतानि बालके ॥४८॥
प्रस्थमात्रेण पिष्टेन विनिर्माय च पुत्रिकाम् ।
ओदनं मत्स्य मास च पर्पटी चेक्षुशूलिकाम् ॥४६॥
नि क्षिपेत्पूर्वसध्यायामुत्तरस्या बलि हरेत् ।
गोशृंगलसुनाभ्या च धूपयेच्चैव बालकम् ॥५०॥

मन्त्र :— [3]ॐ नमो भगवते वासुदेवाय विष्णवे मण्डल बलिमादाय
हन हन हुँ फट् स्वाहा ॥५१

॥ इति नवमदिनमासवर्षग० बा० रो० ह० ॥

दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
[4]रेवती नाम सा देवी ज्वर छर्दिश्वासेङ्गितम् ॥५२॥

१. घ आहारपुष्टं गृह्णाति । २. घ. सिंदूरस्य । ३. घ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय कृष्णमण्डले बलिमादाय हन हन हुं फट् स्वाहा । ४ घ. रेवती ज्वरश्च शूल च छर्दिश्वा-सोगितं त्वदम् ।

अन्ने[1] द्वेषश्च कासश्च बलिर्देयो विचक्षणैः ।
प्रस्थप्रमाणपिष्टेन पुत्रिका प्रतिकल्पिताम्[2] ॥५३
अष्टांग लेपयेद्बिल्व. विटप[3] कटकंस्तत.[4] ।
गुडोदनेन[5] सर्पिश्च ध्वजानां पचविंशति. ॥ ५४
स्वस्तिकानां प्रदीपानां पचविंशतिकल्पना ।
चत्वारि रक्तपुष्पाणि दक्षिणस्या दिशि क्षिपेत् ॥५५

मंत्र — ॐनमो भगवते च[6] वैश्वदेवाय हन हु फट् स्वाहा ।
मत्रोऽयं धूपदानं तु पूर्ववच्च[7] प्रतिक्रिया ॥५६

॥ इति द० दि० मा० व० बा० ग्र० ह० ॥

एकादशे दिने मासे वर्षे वा पूतनान्विता[8] ।
गृह्णाति बालक पश्चात् ज्वरस्तस्य प्रजायते ॥५७
अन्नद्वेषो मुखे शोषो गात्रभगश्च रोदनम् ।
पुत्रिकां माषपिष्टेन रचितां शुक्लमोदनम् ॥५८
पुष्पाण्यपि च शुक्लानि ध्वजानां पंचविंशति ।
स्वस्तिकाना प्रदीपानां पचविंशतिरेव च ॥५९
एतत्सर्वं यमाशाया सध्याया प्रातराहरेत् ।

मन्त्रः — ॐनमो भगवते[9] नारायण चन्द्रहासवज्रहस्ताय ज्वल-ज्वल
दुष्टग्रहादयः प्रणवो भुवनेशानी फट् स्वाहाय मनुर्मतः[10] ।

॥ इति एका० दि० मा० व० बा० ग्र० हरम् ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे वा पूतना शिशुम् ।
अङ्कुताख्या प्रगृह्णाति ज्वरः स्यात्प्रथमं तत. ॥६०
रोदन सर्वदा दतखादन नेत्ररुक् तथा ।
रोमाच ताप इत्येतल्लक्षण तस्य वै शिशो ॥६१

---

१. घ. अन्नद्वेषश्च । २. घ. ०कल्पिता । ३ क. पिटपं । ४. घ ०स्तथा । ५. घ. गुडोदनं च । ६ घ. चैव । ७. घ. मंत्रोय धूपदान पूर्ववत् । ८ घ. पूतनाचिता । ९ घ. भगवते च । १०. घ. मनुर्मितं ।

तंदुलप्रस्थपिडेन[1] कृता चैव तु पुत्रिका[2] ।
त्रयोदश[3] स्वस्तिकाश्च ध्वजादीना त्रयोदश ॥६२

अपूपमत्स्यमांस च तथा पर्पटकामपि[4] ।
एतत्सर्वं दक्षिणस्यां दिशि सर्वं विनिक्षिपेत् ॥६३

मन्त्रः — ॐ नमो नारायण नृसिंहाय नमोऽस्तु ते[5]।
[5]ज्वलद्धस्तापहनद्वय शोषयद्वितय तथा ॥६४
पातयद्वितयं हुं हुं हुं हन[6] हनेति च ।

॥ इति द्वादश० ॥

त्रयोदशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कम्पनम्[7] ॥६५

वेदना तु विनिश्वासः[8] काय' पित्ते विचेष्टिते[9] ।
पूर्वां दिशमपाश्रित्य[10] बलिं देव्यै[11] निवेदयेत् ॥६६

नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ।
कृत्वा पूजा प्रकर्त्तव्या पुष्प[12]-धूपादिभिस्तथा ॥६७
वटका लड्डुकापूपा[13] अभक्त[14] च गुडो दधि ।
चतुर्वर्णपताकाश्च[15] प्रदीपाः पुष्पचन्दनम् ॥६८

मध्याह्ने बलिदानं तु कर्त्तव्यं सुधिया ततः ।
मन्त्रः — ॐ नमो भगवते रावणाय बाल्कं वदेत्[16] ॥६९
मु च मु चाग्निजायांतो मन्त्रोय समुदाहृतः ।
धूपस्नानादिकं सर्वं पूर्वोक्तक्रमतश्चरेत् ॥७०

॥ इति त्रयोदश० ॥

चतुर्दशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।
ताराश्रीयोगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिभ्रंशम् ॥७१

---

१ घ. ०पिष्टेन । २ घ पुत्रिकां । ३. घ त्रयोदशश्च । ४. घ. पर्पटिकानपि । ५ घ प्रज्वलद्धस्तापहनद्वयं शोषयद्वितय तथा । ६. घ हनेति । ७ वामहस्तेस्यपंकजं । ८. क ०श्वासो । ९. घ. कायपित्तो विचेष्टित । १०. घ. ०समाश्रित्य । ११. घ. चेत्येनिवेदयेत् । १२ घ. पुष्पा । १३ घ गुना । १४ घ अप्रमक्तं । १५. पिताकाश्च । १६. घ. चतुर्दशाक्षिनेस्व ।

[1]चक्षुःपीडेङ्गितं तस्याः पश्चिमे बलिमाहरेत् ।
त्रयोदशप्रकारेण बलिदानादिकं चरेत् ॥७२

॥ इति चतुर्दश० ॥

दशपंचदिने मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ।
[2]श्वासः कासो ज्वरश्चैव दक्षिणस्यां बलिं हरेत् ॥७३
बलिदानादिक सर्वं त्रयोदशक्रमेण वै ।
धूपादिकं क्रमात्सर्वं चतुर्थोक्तक्रमेण तु ॥७४

॥ इति पंचदश० ।

षोडशे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति पूतना ।
कुमारी सपित्तोद्वेगो[3] ज्वरः शोषादिचेष्टितम् ॥७५
नैऋत्यां दिशि सश्रित्य मध्यरात्रे बलिं हरेत् ।
बालं सस्थापयेत्पश्चात् शांतितोयेन मन्त्रिणा[4] ॥७६
त्रयोदशप्रकारेण शेषमन्यत्समापयेत् ।
धूपादिकं तु यत्सर्वं[5] चतुर्थोक्तक्रमेण वै ॥७७

॥ इति षोडशदिनमासवर्षगृहीतबालग्रहहरम् ॥

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतन्त्रे दिनमासवर्षे बालग्रहोपायकथनं नाम दशमः पटलः ॥



---

१. क. चतु पिडांगितां तस्या । २. घ. श्वासं । ३. घ. सर्वतोद्वेगो । ४. घ. मंत्रवित् । ५. घ. तत्सर्वं ।

एकादश· पटलः

अथात सप्रवक्ष्यामि बालाना हितकाम्यया
बलि[1] साधारणं चैव ग्रहा[2] रोगास्तथैव च ॥१॥
अथ च[3] पूतना नाम ग्रही गृह्लाति बालकम् ।
तप्तो हिक्कायुत श्वासी स्तनद्वेषी च कम्पवान् ॥२॥
[4]छर्द्दन च प्रजायेत निजागर्त्ति सरुदन् ।
स्वापो दिवा रोमहर्षी आस्यशोष. प्रजायते ॥३॥
गुदरोगी च तत्राशु बलिर्देयः प्रशान्तये ।
कृशरान्न[5] पूर्णकुम्भ सहेमस्तिलचूर्णकम् ॥४
ध्वजो गधश्च पुष्पाणि धूपदीपात्रय[6] बलि· ।
बालानां क्रीडनस्थाने देयो मन्त्रेण मत्रिणा ॥५

मन्त्रः— नीलाम्बरधरो[7] देवि पूतने विकृतानने ।
शिशुं विकाराद् मु चाथ[8] प्रगृह्लीष्व बलिं त्विमम् ॥६

इति श्रीबालतंत्रे षोडशवंध्यावीर्यवृद्धि-गर्भाधानकाल-रुद्रस्नानगर्भिणीरक्षा-प्रसवोपाय-बालग्रहर, मासग्रहहररक्षाविना मास-वर्ष-ग्रहरक्षा-बालग्रहोपाय समाप्तम् ॥

ग्रन्थान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैःस्वकीयै कतिचित्तदीयैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा[9] रुचिरा शिशूनां तां देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात्॥१
अहिछत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणिः ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदासः सता प्रियः ॥२
विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधर सर्वजनाभिवद्य ।
लक्ष्मीनृसिंहाह्लिसरोजभृ गस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थ ॥३
कल्याण इत्यु(दग्)दग्तनामधेयस्तदात्मजो ग्रथवरान्विलोक्य ।
परोपकाराय बबध तत्र सता समालोकनयोग्यमेतत् ॥४
युगवेदरसाकालमिते वर्षे नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेद लिलेख च शिवालये ॥५

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे नाना प्रयोगकथनं नाम एकादशः पटलः ।
समाप्तोऽय ग्रंथः । लिखितं लक्ष्मीनारायणेन भक्तावरस्य पठनार्थं ॥
फाल्गुन शुक्ला १ प्रतिपदि रविवासरे स० १९२८ शाके १७९३ श्री

---

१. क बलि । २ घ ग्रह । ३. घ अथ । ४ क. छर्द्दनं । ५. क कृशशन्नं । ६. घ. धूपदीपादियं बलिम् । ७. घ. धरा । ८. घ. मुंचाथ । ९. क. निकैछा ।

॥ अथ महापूतनास्य(ख्य) ग्रहहर ॥

ताडितः संप(य)तस्तूष्णी प्रपतेदमुम् ॥७

बाल महापूतनास्य(ख्या) गृह्णाति च ततो ज्वरः ।
जागर्त्ति च दिवारात्रं स्तन भुक्ते च सत्यपि ॥८
कासश्वासाक्षिरोग च पूतिगधः प्रजायते ।
अन्न मास च रक्त च गध. पुष्पाणि वाससी ॥९
धूपदीपौ हिरण्येन युक्त पूर्णघटस्तथा ।
स्नुहीवृक्षस्य मूले तु बलिं मंत्रेण निक्षिपेत् ॥१०

मंत्रः— कराले चडिका मूले कषायाम्बरधारिणी ।
रक्षामु पूतना देवी प्रगृह्णीष्व बलिं त्विमम् ॥११

॥ अथोर्द्ध्वपूतना ॥

लोमादिना तु य कुर्य्यात्तिरस्कारं वरैर्नरै. ।
तेषामूर्द्ध्वपूतनाख्या बाल सक्रमते ग्रहः ॥१२
ततो ज्वरो वाक्षिरोगी सनिद्रश्च दिवा भवेत् ।
विनिद्रोऽपि निशाया तु कामयुक्तश्च जायते ॥१३
अन्न मांस च रुधिरं वस्त्र रक्त च चन्दनम् ।
सहिरण्यः पूर्णकुम्भस्तु स्नुहीमूले निशामुखे ॥१४

मन्त्रः— त्वमूर्द्ध्वपूतने देवि प्रगृह्णीष्व त्वमु बलिम् ।
शिशुविकारान्मचाद्याश्रुनेत्रे रक्तदर्शने ॥१५॥

॥ अथवा बालकाग्रहहरं ॥

रि(ऋ)तौ स्वरावागमन कृत्वा स्नानादिवर्जितः ॥१६
अरितौसौ हिनस्तु स्वप्ने जन्मान्तरे तु तम् ।
बाल्ये ग्रहे सक्रमते स्वपे जन्मान्तरे तु तम् ॥१७
बाल्ये ग्रहे सक्रमते बालकाख्यो महाग्रह ।
तत पक्षाभिघाती स्याद्रक्तनेत्रश्च जायते ॥१७
पायस सक्तवो मेषकुर्कुटच्छागलोहितम् ।
रक्तवस्त्र रक्तगध रक्तपुष्पाणि चैव हि ॥१८
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ।
एतद्वटस्य मूले वा यवक्षेत्रेऽपि वा क्षिपेत् ॥१९

मंत्र:— प्रगृह्णीष्व बलिं चेम बालकान् स महाग्रहम् ।
शिशुविकारान्मुञ्चाद्य कुमारस्य प्रियप्रभो ॥२०

॥ अथ रेवती ॥

रेवती बालकं नाम्नी ग्रहः मक्रमते शिशुम् ।
भूषणैर्बहुभिर्युक्तं गधादिभिरलंकृतम् ॥२१
अथवा स्त्रीधनग्राहि कुटनाथ (कुटुम्वादि) वृते वलात् ।
यस्तं जन्मान्तरे बाल्ये ग्रही गृह्णाति रेवती ॥२२

हरिद्राछागविण्मूत्रपीतस्फोटि च जायते ।
अग्निदग्धाकृतिस्फोटभवच्छर्दा ततः पुन ॥२३

पयसाऽपूपलाजाश्च सक्तवो गध एव च ।
पुष्पाणि धूपदीपौ च मांसं काचनगर्भित· ॥२४

पूर्णकुम्भश्च नद्यां वा गोष्ठबाह्य विनिक्षिपेत् ।
मत्र — चित्राम्वरधरे देवि चित्रमाल्यानुलेपने ॥२५

चलकुण्डलरंडाद्ये रेवती मंडलप्रिये ।
अलकारप्रिया देवी मातृकाग्रहरूपिणी ॥२६

शिशुविकारान्मुचाद्य रेवती मातृका ग्रही ।
प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं रेवति प्रियभूषणैः ॥२७

॥ प्रकारान्तरेण रेवती ॥

सध्याकाले शयान तमुच्छिष्ट मुक्तमूर्द्धजम् ॥२८
रेवत्याख्या सक्रमते तत्क्षणाद्बालक ग्रह. ।
आस्यशोपो भवेत्तस्य दाह कपश्च [जायते] ॥२९
कृष्णवर्णश्च जायते वलिर्देय. प्रशान्तये ।
लाजाश्च पायस सर्पि. कुक्कुटो मेष एव च ॥३०
रक्तवस्त्र रक्तगधः पूर्णकुम्भः सकाचनः ।
वटस्य मूले शम्या वा प्रदोषे निक्षिपेद्बलिम् ॥३१
मंत्र:— चित्राम्वरधरे देवी चित्रमाल्यानुलेपने ।
शिशुविकारान्मुचाद्य रेवति त्वं महाग्रहे ॥३२

॥ अथ पुष्परेवती ॥

भूमौ शयान सध्यायां निद्रित पुष्परेवती ।
गृहे संक्रमते वाल तेनाङ्गं शीतता भवेत् ॥३३

आस्यशोषं च दाहश्च कृष्णपादांगुलीषु[1] च ।
नखेषु[2] कृष्णवर्णत्वं दातव्यं शांतये बलिम् ॥३४
मधुयुक्तं पायसं च गन्धपुष्पाणि वा शशिः ।
धूपदीपौ हिरण्येन युक्तः पूर्णघटस्तथा ॥३५
सुपुण्यायतने कापि बलिमंत्रेण निक्षिपेत् ।
मंत्रः— पुष्पाख्यरेवती देवी प्रगृह्णीष्व बलिं त्वमुम् ॥३६
बालकस्य सुख सिद्धि प्रयच्छ त्वं वरानने ।

॥ अथ शुष्करेवती ॥

भूमौ निपतितं बालं रुदन्तं छर्दिनं तथा ॥३७
अप्रक्षालितगात्रं च गृह्णीयाच्छुष्करेवती ।
ततो ज्वरमुखशोषहृच्छोष्यापि च शूल्यपि ॥३८
शिरोरोगार्तिभूतश्च तज्जीर्णेन युतो भवेत् ।
मुद्गाभ श्वेतपुष्पाणि श्वेतवस्त्र च चन्दनम् ॥३९
धूपदीपौ पुष्पहृत् वृक्षमूले बलिं हरेत् ।
मंत्रः— शुष्काख्यरेवती देवि प्रेतरूपे यशस्विनी ॥४०
करालवदने घोरे प्रगृह्णीष्व बलिं त्विमम् ।

॥ अथ शकुनिग्रहहरम् ॥

उच्छिष्टभोजनं देवालयमूत्रादिकारणम् ॥४१
शकुनिर्नाम गृह्णाति ततो जागर्त्ति वै निशि ।
मुखे कंठ अपाने च व्रणातिसारवान् भवेत् ॥४२
ज्वरी कृष्णच्छविर्त्रातरोगी भवति बालक ।
आममांस पक्कमांसं हरिद्रान्न पयो घृतम् ॥४३
तिलपिष्टं तथापूपा वस्त्रगंधादिक तथा ।
हिरण्यसहितं कुंभः श्मशाने निक्षिपेद् बलिम् ॥४४
मंत्रः— प्रगृह्णीष्व बलिं चेमं शकुन्याख्या महाग्रहि ।
शिशुं विकारान्मुचाद्य सुभगे कसरूपिणी ॥४५

॥ अथ शिशुमुडिक ॥

नित्यकर्मविहीनानां पोपकाना च पक्षिणाम् ।
जन्मान्तरे सक्रमते बालक शिशुमुडिका ॥४६

---

१. पुंग । २ नमेषु ।

ततो रोदति पाणि च पादौ चाक्षिणी कपते ।
वामे ज्वरी च जायेत अत्र हार्यो बलिस्ततः ॥४६

हरिद्रान्न तिलान्न च मिष्ट चापूपपूपिकाः ।
सर्पिर्मधु दधि क्षीर गन्धपुष्पाणि वाससी ॥४८
धूपदीपौ हिरण्येन युक्त पूर्णघटस्तथा ।
पुरातनवटाभ्यर्णे निक्षिपेत्मत्रतो बलिम् ॥४९
स्वलकृतस्वरूपे त्व भवन्ति शिशुमुडिके ।
शिशुं विकारान्मुञ्चाद्य चडिके च त्रिविक्रमे ॥५०

॥, इति शिशुमुण्डिकाग्रहहरम् ॥

अथ सामान्यतो बालग्रहाविष्टे चेष्टोद्वर्तनस्नानधूपमन्त्रा —

नखदन्ता विकारि स्यान्निद्राहीनोऽथवा भयोद्वेगी ।
दुर्गन्धो विचेष्टो बालो बाल ग्रहाविष्टः ॥५१
दूर्वासतिक्ताविषमच्छदत्वक्प्रोद्वर्त्तनाद्धन्ति शिशुग्रहार्तिम् ।
सप्तच्छदाश्वत्थमधूकसेलूपत्रक्वाथोभस्नापनाच्च शीतात् ॥५२
वशत्वग्गजसंयुत सलशुन सारिष्टपत्रे घृतम्,
निर्माल्यं (नर)केशसर्पितु रगत्वग्गोरराजीयुतम् ।
सिद्धार्थं जतुनिंवपत्रसहितं वंशत्वगाज्यान्वितं,
धूपाना त्रयमेतदाशु सकलान्बालग्रहान्नाशयेत् ॥५४
प्रणव शखेश्वरमायास च वदेत्तत. ।
खगेश्वर ततो लूना कर्पण कर्षण वदेत् ।।५५
वह्निजायावधिर्मंत्रो विलेपनविधौ स्मृत. ।
अथाह सप्रवक्ष्यामि अभिषेके वरं मनुम् ॥५६
प्रणवं सर्वशब्दान्ते मातरेति पद वदेत् ।
इम ग्रह संहरन्तु हुँ रोदय च- रोदय ॥५७
स्फोटयद्वितय गृह्णद्वयमामर्दयद्वयम् ।
शीघ्रं हनद्वय प्रोच्य एव सिद्धो वदेत्ततः ॥५८
रुद्रो ज्ञापयति स्वाहा स्नापने तु समीरितः ।
बालकस्य शिखां स्पृष्ट्वा जप्त. सर्वग्रहान् हरेत् ॥५९

सुखुर्दन समुच्चार्य खे हुं फट् वन्हिवल्लभा ।
नवार्णोयं समाख्यातो धूपने सर्वकर्मसु ॥६०

मन्त्रः— रक्ष रक्ष महादेव नीलग्रीवो जटाधरः ।
ग्रहैस्तु सहितो रक्ष मुंच मुच कुमारकम् ॥६१
भूर्ये मंत्रममुं लिख्य गुलिकां कृत्वोपवंधयेत् ।
भुजे बाल्याभिरक्षार्थे सर्वग्रहहरं परम् ॥६२
पालासोदुम्बराश्वत्थबिल्वन्यग्रोधपल्लवैः ।
क्वथितेन कषायेन परिषिंचेत्प्रशान्तये ॥६३
प्रणवं मुंच मुचेति एक एक जयद्वयच[1] ।
आगच्छ बालिके न च सवदेत् ॥६४
वन्हिजायावधिर्मंत्रः सर्वग्रहविमोचनः ।
जपे होमे तर्प्पणे च बालकस्य सुखावह ॥६५

तार लुयुग्ममुदवकं सिरमभिरणे,
शक्ति वृहता च शिशु नामवतिशशाको ।
अर्द्धेन्दुबर्हिरवो वदनोपरि तौ,
यंत्रं तदाशु शिशुरोदनमुक्षिणोति ॥६६

षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य मायां नामान्विता चन्द्रयुगेन खीलाम् ।
षट्कोणमध्ये तु परक्षराणि चन्द्रैर्युतं यंत्रमिदं त्वपूर्णं ॥६७

इति कल्याणेन कृते बालतंत्रे साधारणो नाम एकादश पटल ॥

द्वादशः पटलः

विदो विदार्याः पयसा प्रपीतस्तत्स्तन्यवृद्धि विदधाति सद्यः ।
गोधूमयूष. सह गोघृतेन तद्वत्प्रदिष्ट सितया समेत. ॥१
मागविकाया. कर्षं सप्ताह या पय प्रष्टम् ।
सुवर्णपयोधराम्भौ तस्या भवतः पयोधरौ नियतम् ॥२
प्रजातिकर्षं पयसा प्रदिष्ट या सेवते सप्तदिनानि नारी ।
तस्या. कुचौ संततदुग्धपूर्णौ कुमारपुष्टि कुरुतः सुखेन ॥३

---

१. 'एव च द्वयं' इत्यपि पाठः ।

पिप्पल्यरजोभिर्ग्रहधूमरजोयुतं कृतायुपा ।
असिततिलतैलसहिता भुक्ते स्त्रीणा पयो जनानाम् ॥४

कुक्कुरमर्दकमूलं सुविधिहुत वदनमध्यगत नार्या ।
सतत स्वितं दशाहात्प्रभूतदुग्धप्रद भवति ॥५

क्षीरान्नादाभवेत्क्षीर मधुरद्रव्यसाधितम् ।
क्षीरसजनन नार्या. प्रयत्नेन दिनत्रये ॥६

पथ्यं तदुलरजसपयस्क या पिबत्यनुदिन सघृतेन ।
दुग्ध भक्तमशन विदधाना सा क्षरत्यविरत बहुदुग्धम् ॥७

वनकर्पासिकेक्षणा मूल सौरकेन वा ।
विदारिकदस्वरस पिवेद्या स्तन्यवर्द्धनम् ॥८

शालिषष्टिकगर्भेक्षकुसकासमलान्वितम् ।
गुदेक्षवास्तुकामूल दशैते स्तन्यवर्द्धना: ॥९

॥ इति स्तन्यप्रवर्द्धने (नम्) ॥

यथोक्ता कारयेद्धात्री नवयौवनसस्थिताम् ।
शुचिर्नं(म) रोगामकृशा जीवद्वत्सामलक्तताम् ॥१०

मध्यप्रमाणां श्यामाङ्गो विशेषात् शीलशोभिताम् ।
कुलजां तुङ्गकुचा दोग्ध्री शुद्धचित्तामलोलुपाम् ॥११

शुचिदेहा हासवक्त्रा वत्सला ग्रहवर्जिताम् ।
स्तन्यमस्या परीक्षेत स्तस्या नाह्वयकोविद ॥१२

शुद्धे स्तन्ये न रोगः स्यादन्यथा रोगसम्भव. ।
शीतत्व विमल क्षिप्तमेकीभाव जलं व्रजेत् ॥१३॥

वचा भिद्यति तत्सिद्ध स्तन्यफेनाविवर्जितम् १४॥

अथवैतस्य बालस्य कश्चिद्रोगो न जायते ।
अथवा मातुरेवास्य स्तन्यं शुद्ध प्रदापयेत् ॥१५

मिथ्याहारविहारिण्यो दुष्टा वातोदस(राः)स्त्रियः ।
दु खयन्ति पयस्वेन बाले रोगस्य संभवः ॥१६

तस्मात्प्रयत्नतो धात्र्य प्रथमं क्रान्ततो हि तम् ।
अस्याश्च मनसा कष्ट कदाचिन्नैव कारयेत् ॥१७

॥ इति धातृलक्षणम् ॥

अमृता सप्तपर्णं च क्वाथः स्तन्यस्य शुद्धये ।
पाययेदथवा पाठाद्युक्तं निक्वाथरोहितम् ॥१८

भूनिम्बपाठामधूक निक्वाथ्य तोयेन कणार्द्धचूर्णम् ।
प्रक्षिप्य पीत शिशुरोगशान्ति दुग्धस्य शुद्धि च करोति सद्यः ॥१६

पंचकोलमधुकैः सकुलत्थैर्बिल्वमूलतगरैः कुचलेप ।
श्रादितो हितकरो वहुवार दुग्धशुद्धिभयमाशु विद्यते ॥२०

पाठारसाञ्जन मूर्वा सुरदारुप्रियगवः ।
एभि स्तन्यकृतो लेपः स्तन्यशुद्धिकरः परः ॥२१

पयसा मधुकं द्राक्षा सिन्धुवारहिमाम्बुना ।
पीतस्तन्यस्य वैवर्ण्यं पतिगंधहर मतम् ॥२२

मुस्तं पाठा शिवं कृष्णा चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
एतेन सहसा शुद्धि ध्रुवं स्तन्यस्य जायते ॥२३

त्रायमाणामृतानिवपटोलैस्त्रिफलान्वितैः ।
स्तन्यः प्रलेपितः शीघ्र स्तन्यशुद्धिः प्रजायते ॥२४

पूर्वमालेपनं कार्यं तस्मिञ्शुष्कत्वमागते ।
स्तनोऽतिदुग्धो विधिना पाययेद्बालक तत ॥२५

॥ इति स्तन्यशुद्धिः ॥

अथ रोगान् परीक्षेत रोदनान् मुखवर्णत. ।
स्तन्याकर्षणतश्चापि ततः कुर्याच्चिकित्सितम् ॥२६

मात्रया लंघयेद् धात्रीं शिशोर्नेष्ट विशेषणम् ।
सर्वं निर्वायते बाले क्वचित्स्तन्यं न वारयेत् ॥२७

वातेन ध्मापित नाभि सरुजां तुण्डसज्ञिताम् ।
मारुताद्यैः प्रशमयेत्स्नेहस्वेदोपतापनैः ॥२८

मृत्पिण्डेनाग्निवर्णेन क्षीरासिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुच्छ्रितां नाभि शोफस्तेनोपशाम्यति ॥२६

दुग्धेन छागस(श)कृता नाभिपाकेन चूर्णकम् ।
त्वक्पर्णी. क्षीत(रं)स(श)स्तमथ चन्दनरेणुना ॥३०

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः सृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णितम् ॥३१

बालोऽथ चिरजातः स्तन्यं गृह्णाति नाभितस्तस्यास्तु ।
सैन्धवं च धात्री मधुघृतपथ्याकंरजकेन घर्षयेज्जिह्वाम् ॥३२

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं पातयेत्क्रियाम् ।
रसांजनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥३३

जात्या प्रवालकुसुमानि समाक्षिकानि,
योज्यानि बालकजनस्य मुखप्रपाके ।
गुदस्य च रसाजनलोध्रचूर्णं,
योज्यं भिषग्भिरुपदिष्टमिदं शिशूनाम् ॥३४

आम्रसाररजसा सह शस्तं जातिना समुदितो मुखपाकः ।
गैरिकेण मधुनाथ च सर्वा श्वेतसारखदिरांजनयोगैः ॥३५

विशेषबालकं स्नेहैरभ्यगं समुपाचरेत् ।
कोष्णेन पयसा स्नानं ततः कुर्वीत कालवित् ॥३६

दुष्टग्रहागृहीतानां नृणां नेष्टं तु दर्शनम् ।
विशेषाद्रक्षयेद् दृष्टिं दोषं रक्षादिभिः शिशौ ॥३७

॥ इति नाभिगुदमुखपाकचिकित्सा ॥

[1]मुस्तत्रयानिम्बपटोलयष्टिक्वाथः शिशूनां ज्वरनाशकारी ।
तद्वद्गुडूचीविहितश्च सारः सुप्रत्ययोऽयं मधुनावलीढः ॥३८।३९

सितामधुभ्यां कटुकावलीढे साध्मानमुग्रं ज्वरमाशु हन्यात् ।
तत्कल्कलेपश्च कृतः शिशूनां मुहुर्मुहुर्दोषविनाशहेतुः ॥४०

क्वाथः कृतः पद्मकनिंबधान्यछिन्नोद्भवाबालकचन्दनेन ।
ज्वरं जयेत्सर्वभवं कृशानुः धात्री शिशूनां प्रकरोति पीतः ॥४१

अमृतंका जले पाचद्यामाष्टकमिव स्थितिः ।
शिशूनां शमयत्याशु सर्वदोषभवं ज्वरम् ॥४२

यष्ठिमधुतुगाक्षीरीलाजांजनसिताकृतः ।
लेहः प्रदत्तो बालानामशेषज्वरनाशनः ॥४३

---

१. 'मुस्तं च भूनिम्ब०' इत्यपि पाठः ।

क्वाथः स्थिरागोक्षुरविश्वबालक्षुद्राब्दकच्छिन्नरुहाकिरातैः ।
वातज्वरं संशमयेत्प्रपीते वाले च धात्र्या च कृशानुकारी ॥४४

पंचमूलकृतः क्वाथः पीतो वातज्वरापहः ।
तद्वच्छिन्नरुहाद्राक्षागोपकन्याबलाभवम् ॥४५

गुडूचीसारिवोशीरचन्दनोत्पलपद्मकैः ।
यष्टीमधुककाश्मर्यधान्यकैर्विहितो जयेत् ॥४६

सारिवोत्पलकाश्मर्य्यछिन्नापर्वतपर्पटैः ।
क्वाथः पीतो निहन्त्याशु शिशूनां पित्तजं ज्वरम् ॥४७

मुस्तापर्पटकोशीरसारिवापद्मसाधितम् ।
शीतवारि निहन्त्याशु तृष्णादाहवमिज्वरान् ॥४८

मधुकं चंदनं द्राक्षा धान्यकं सदुरालभा ।
एतैः क्वाथः कृतो हन्याद् वातदाहे ज्वरापहः ॥४९

मुस्तक चन्दन वासा ह्रीबेरं यष्टिकामृता ।
एषां क्वाथस्तु पित्तघ्नस्तृषादाहज्वरापहः ॥५०

वासापर्पटकोशीरनिबभूनिंबसाधितः ।
क्वाथो हन्ति वमिश्वासकासपित्तज्वराञ्जयेत् ॥५१

अभयामलकी कृष्णा त्रितयोयं[1] गणो मतः ।
दीपनः पाचनो भेदी सर्वश्लेष्मज्वरापहः ॥५२

कट्फलं पुष्करं शृंगी पिप्पली मधुना सह ।
एष लेहो ज्वरं श्वासं कासं मन्दानलं जयेत् ॥५३

कटुक कट्फलं शृंगी पुष्करं पिप्पली नलः ।
समस्तान्येकशो वापि द्विशो वापि भिषग्वरः ॥५४

एतान् चूर्णीकृतान् दद्यात् मध्वार्द्रकरसप्लुतान् ।
कफज्वरारुचिश्वासच्छर्दिशूलानिलापहन् ॥५५

क्षौद्रोपकुल्यासंयुक्तस्तु श्वासकासज्वरापहः ।
प्लीहानं हति हिक्कां च बालानां तु प्रशस्यते ॥५६

---

१. 'त्रिफे योयं' इत्यपि पाठः ।

पिप्पली मुस्तक श्रृंगी विपा मधुयुतं समम् ।
कासश्वासज्वर हन्यात् शिशूनां चतुरामृतम्[1] ॥५७

मधुक सारिवा द्राक्षा मधुकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्म(श्मी)री पद्मक लोध्र त्रिफलापयकेशरम् ॥५८

परुषक च मृणाल च न्यसेदुत्तमवारिणी(णि) ।
मधुलाजासितायुक्त तत्पीत मुषित[2] निशि ॥५६

वातपित्तज्वर दाह तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् ।
शमयेद्रक्तपित्त च जीमूतमिव मारुत. ॥ ६०

कैरातो जलदा छिन्ना पंचमूली लघुस्तया ।
एषा कषायो हंत्याशु वातपित्तोत्तर ज्वरम् ॥६१

मुस्तापर्पटके छिन्ना किरात विश्वभैषजम् ।
एषां कपायो दातव्यो वातपित्तज्वरापह ॥६२

उशीर मधुक द्राक्षा काश्मीरी नीलमुत्पलम् ।
परूपक पद्मकं च मधुकं मधुकं बला ॥६३

अभिशीतकपायोऽय वातपित्तज्वर जयेत् ।
प्रलापमूर्च्छासदाहतृष्णापित्तज्वरापहः ॥६४

त्रिफला पिचुमदश्च पटोलं मधुक बला ।
एभिः काथः कृतः पीत पित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥६५

अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोल कटुरोहिणी ।
नागर चन्दन मुस्त पिप्पलीचूर्णसयुतम् ॥६६

अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम् ॥६७

मुस्तामृतापर्पटपुष्कराब्दै· पटोलधान्याककिराततिक्तः ।
सचन्दनोशीरवलाजलाख्यै. काथः पर पित्तकफज्वरघ्नः ॥६८

हृल्लासतृष्णो मोहश्चारुचिर्दाहश्च छर्दनम् ।
पार्श्वव्यथावधहारिप्रयोगोऽय सुशोभनः ॥६६

१. कफज्वरे चतुरामृतगुटी(सं०) । २. पुष्टिदं ।

धान्यकचन्दनपद्मकमुस्ताशक्रयवामलकैः सपटोलः ।
शीतकषायमुखे खलु दद्याद्बालकपित्तकफज्वरहृ तु ॥७०

घासारसौ क्षौद्रसितासमेतौ ज्वरं हरेत्पित्तबला सजातम् ।
सश्वासकासश्च वमि सदाह सकामल हन्ति सरक्तपित्तम् ॥७१

आरग्वध सातिविषः समुस्तातिक्तः कषायो ज्वरमाशु हन्यात् ।
साम सशूलं सवमि सदाह साध्मानबध सकफ सवातम् ॥७२

किरात तिक्तक मुस्तं गुडूची विश्वभैषजम् ।
चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥७३

मुद्गतडुलससिद्ध कट्फलैर्वामकुष्ठकैः ।
पथ्यमंत्रमिदं दद्याद्यूष वातकफज्वरे ॥७४

दशमूलकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसयुतः ।
संमोहतन्द्रा शमयेत् सन्निपातज्वरं परम् ॥७५

छिन्ना सठी पुष्करमूलतिक्ता. शृंगी सपाठामृतवानरीभिः ।
दुरालभाविश्वकिराततिक्ताः समस्तदोषज्वरहृद्गणोऽयम् ॥७६

भूनिम्वदारुदशमूलमहौषधाब्द तिक्तेन्द्रबीजघनिकेभकणाकषायः ।
तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिल ज्वरमाशु हन्ति॥७७

वासाव्याघ्रीकणालेह शीतज्वरविनाशनः ।
तद्वत्क्षुद्रामृतानंततिक्ता भूनिम्बसाधिता ॥७८
गुडूचीविहित. क्वाथः कणाचूर्णसमन्विता ।
एकाहिकज्वर हन्ति कासश्वासादिदूषितम् ॥७९
द्राक्षापटोलत्रिफलापिचुमदवृषैः कृतः ।
क्वाथ' एकाहिक हन्ति परार्थमिव दुर्जनम् ॥८०
आमन्त्र्य पूर्वं शुचि निगृहीत मयूरमूल वरकोष्ठवध्याम् ।
प्रातर्दिने शस्यदिने निहन्यादेकाहिक शोणितमूत्रबधम् ॥८१
मिष्टतैलप्लुतं कृत्वा कज्जल तेन कारयेत् ।
तेनाजिताक्षः क्षिप्रेण हन्यादेकाहिक ज्वरम ॥८२

---

१. हत्वा दिनेशदिवसे मार्जन्या गृहमकंटी ।
कुमारीकृतसूत्रेण वेष्टयेद्वर्त्तिसम्भवम् ॥

ज्वर तु नाभिपगोत्थ रक्षामत्रादिभिर्नयेत् ।
विषघ्नौषधयोगेन विषोत्थमपि बुद्धिमान् ॥८३

निम्बपत्रामृतानंतापटोलेन्द्रयवै कृतम् ।
क्वाथ सततक हन्यात् मुप्तभूव्यसनं यथा ॥८४

गुडूचीचन्दनोशीरधान्यनागरतोयदै· ।
क्वाथस्तृतीयक हन्यात्शर्करामधुमिश्रितम् ॥८५

एकशो वचा कुष्ट गजचर्म विचर्म च ।
निंबस्य पत्र माक्षीक सर्पियुक्त तु धूपनम् ॥८६

ज्वरवेग निहन्त्याशु बालानां तु विशेषत. ।
सर्पित्वक्सिसपारिप्टपल्लवास्तेजनी वचा ॥८७

रसोनहिंगुलवणैः शृंगिमिरचमाक्षिकै. ।
धूपः सर्वग्रहघ्नोत्थ कुमाराणां ज्वरापह. ॥८८

निर्मोकामरदारुहिंगुमरिचारिष्टच्छद माक्षिकं,
निर्माल्ये नरकेशसर्षपवचा गधारसोनः शिलाः ।
यष्टिर्गुग्गुलकुष्टपिच्छलवणं मार्जारविष्टाघृतं,
सर्जो रुद्रजटार्कपत्रनलद पचेपुपूर्व फलम् ॥८९

निम्बकुप्टवचायष्टी(कुप्टि)सिद्धार्थकफलं कपै ।
सर्पिर्लवणसर्पकंचुयवैर्धूपो ज्वरापह· ॥९०
निर्गुण्डया सहदेव्याश्च कटौ बद्ध जटाद्वयम् ।
प्रातरादित्यवारे च सर्वज्वरविनाशकृत् ॥९१
कन्यार्कातितसूत्राणि बद्धापामार्गमूलिका ।
एकाहिकं ज्वरं हति शिखायामपि वेगतः ॥९२
कर्णौ बद्ध्वा रवौ श्वेततुरंगरिपुमूलिका ।
सर्वज्वरहरा श्वेतमदारस्य च मूलिका ॥९३
काकमाचिसिफाकर्णे वस्त्र रात्रिज्वरापहम् ।
पाणिस्थं वृकवृन्दाक युते वितनुते जयम् ॥९४

॥ इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे ज्वरहरणोपायकथनं नाम द्वादश पटलः ॥

त्रयोदशः पटलः

लोध्रं सम(गं)गाजलधातुकोभिः समानि वाभिर्विहित कषायः ।
बालातिसारं सहसा निहन्यादेकाथ मुस्ता मधुनावलीढा ॥१

विल्व च पुष्पाणि च धातुकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च ।
काथावलेहो मधुना विमिश्रौ वालेषु योज्यावतिसारते(के)षु ॥२

मुस्ताविषाशक्रयवाच्छमिश्रैः शिशोरतीसारहरः कषायः ।
आम्रातिकल्कस्वरसश्च तद्वद् वृद्धिद्वयं वा मधुना च लीढा ॥३

नागरातिविषा मुस्ता कुटजैः काथित जलैः ।
प्रातः पीतं कुमाराणां शीघ्रं सर्वातिसारजित् ॥४
पिष्ट्वा पटोलमूल च शृगवेरवच मपि ।
विडंगान्याजमोदा च पिप्पलीतण्डुलान्यपि ॥५
एतान्यालोड्य सर्वाणि सुखतप्तेन वारिणा ।
आमप्रवृत्तेऽतीसारे कुमार पाययेद् भिपक् ॥६
नागरातिविषामुस्ताकाथः स्यादामपाचनम् ।
विषं वा सगुडं लीढं मधुनाऽऽमहर परम् ॥७
मुस्त मोचरसा पाठा विल्वं लोध्र सनागरम् ।
तक्रेण पीतं दुर्वारं शिशौ हन्त्युदरामयम् ॥८

॥ इति अतीसारः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कषायः स्तनदोषजित् ।
धानकृष्णारुणाशुठीचूर्णं क्षौद्रेण योजितम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्न कासश्वासवमि जयेत् ॥१०
धातुकीबिल्वधान्याकलोध्रेन्द्रयवबालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिहृत ॥११

॥ इति ज्वरातीसार ॥

यवानी जीरकं व्योषं कुटज विश्वभेषजम् ।
एतन्मधुयुतं लीढं बालानां ग्रहणीं जयेत् ॥१२
पिप्पलीविजयाशुठीचूर्णं मधुयुतं भिषक् ।
दत्वा निहृत्य ग्रहणीरुजां नियतिमाप्नुयात् ॥१३

कृष्णा महौषधं मुस्तं कुटजस्य यवानिकम् ।
मधुसर्प्पिर्युत लीढ वातजां ग्रहणी हरेत् ॥१४

नागर मुस्तक विल्वं चित्रक ग्रंथिकं शिवा ।
चूर्णमेतन्मधुयुत कफजां ग्रहणी जयेत् ॥१५

सगुडं नागर बिल्व यं खादति हि नाशन. ।
त्रिदोषग्रहणीरोगान्मुच्यते नात्र सशयः ॥१६

मुस्तकातिविष बिल्वं चूर्णितं कोष्ठज तथा ।
क्षौद्रेण लीढ्वा ग्रहणी सर्वदोषोद्भवां जयेत् ॥१७

॥ इति संग्रहणी ॥

यवानी नागरं पाठा दाडिम कुटजं तथा ।
चूर्णोऽयं गुडतक्राभ्यां पीतोऽर्शशमनः परः ॥१८

अजाजी पुष्करं पाठा त्र्यूषण दहनं शिवा ।
गुडेन गुटिका ग्राह्या सर्वार्शोनाशि निर्मिता (नी मता) ॥१९

नवनीततिलाभ्यासात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसारमथिताभ्यासात् गुडजा शाम्यति रक्तवहा ॥२०

कैकटक्षं कौटज बीजं केशर पद्मकेशरम् ।
एतन्मधुयुतं लीढ रक्तार्शोनाशनं परम् ॥२१

एवं वा कौटज वीजं रक्तार्शो मधुना हरेत् ।
तद्वन्मुस्तामोचरसकपित्थच्छदजो रजः ॥२२

॥ इति अर्श ॥

धान्यनागरजःक्वाथः शूलामाजीर्णनाशनः ।
पूर्णशुक्रयुतः[1] पीतस्तद्वद्दोषाग्निजीरकैः ॥२३

पिप्पली रुचकं पथ्या चूर्णं मस्तुजल पिवेत् ।
सर्वाजीर्णहरः शूले गुल्मानाहा(म)ग्निमांद्यजित् ॥२४

(त्रि)त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठैर्म(र)म्लप्रपिष्टै सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्त्तन पलिलविषूचिकाघ्न तैल विपक्वं च तदर्थकारी ॥२५

॥ इति अजीर्णविषूचिका ॥

---

१. क्वचित् 'पूर्णस्तत्र शुभ' : ।

अभयानैगुरुस्निग्धैर्मंद्रसांद्रहिमस्थितैः ।
पित्तघ्नै रेचनैर्धीमान् भस्मकं प्रशम नयेत् ॥२६

औदुम्बरं त्वच पिष्ट्वा नारीक्षीरयुतं पिबेत् ।
ताभ्यां च पायसं सिद्ध मुक्त जयति भस्मकम् ॥२७

मयूरतण्डुलैः सिद्धं पायसं भस्मकं जयेत् ।
विदारीस्वरसक्षीरसिद्धं वा माहिषो घृतम् ॥२८

॥ इति भस्मकः ॥

कल्कः प्रियगुकोलास्थिमधुमुस्ताञ्जनैः कृतः ।
क्षौद्रलीढकुमारस्य छर्दितृष्णातिसारजित् ॥२६

यवानीकुटजारिष्टसप्तपर्णपटोलकैः ।
लेहः छर्दिमतीसार ज्वरं बालस्य नाशयेत् ॥३०

पीतश्चन्दनचूर्णेन मधुनामलकीरसः ।
छर्दि सदाहा सतृष शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥३१

हरीतक्याः कृत चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
अधस्ताद् विहिते दोषे शीघ्र छर्दिः प्रशाम्यति ॥३२

पटोलनिंबत्रिफलागुडूचीभिः सृतं जलम् ।
पीतं क्षौद्रयुत छर्दिमम्लपित्तभवां हरेत् ॥३३

अश्वत्थवल्कलं शुष्क दग्धं निर्वापितं जलम् ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्दि जयति दुर्ज्जयम् ॥३४

॥ इति छर्दिः ॥

शिलाज्जाजनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
तृष्णाछर्दिमतीसार शिशूनामुद्धतां हरेत् ॥३५

पिप्पली मधुक जम्बूरसालतरुपल्लवाः ।
चूर्णोऽय मधुना चेति तृष्णाप्रशमन. शिशो. ॥३६

दाडिमस्य तु बीजानि जीरक नागकेशरं ।
चूर्णं च शर्कराक्षौद्रौ लेहस्तृष्णाहरः शिशोः ॥३७

हिंगुसैन्धवपालासचूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
लीढ निवारयत्याशु शिशूनामुद्धता तृषाम् ॥३८

॥ इति तृषा ॥

सुवर्णं गैरिक पिष्ट्वा मधुना सह लेहयेत् ।
शीघ्र सुखमवाप्नोति तेन हिक्वार्दितः शिशुः ॥३९

शुण्ठीधातृकणाचूर्णं लेहयेन्मधुना शिशुम् ।
हिक्वानां शान्तये [त]द्वदेक वा माक्षिकं सकृत् ॥४०

पिप्पलीरेणुकः क्वाथः सहिंगुः समधु कृत ।
हिका वहुविधा हन्यादिद धन्वन्तरेर्वचः ॥४१

॥ इति हिक्वा ॥

पिप्पली पिप्पलीमूल नागरं मधुना लिहन् ।
कासं पंचविध श्वास शिशुराशु विनाशयेत् ॥४२

विहितो मधुना लेहो व्याघ्रीकुसुमकेशरैः ।
लीढादि (नि)नशियत्याशु कासं पचविध शिशोः ॥४३

क्षौद्रयुक्ता तु गोक्षीरी[1] कासश्वासं व्यपोहति ।
बालस्य नियत कृष्णा शृंगी वा मूलसयुता ॥४४

एका शृंगी निहन्त्याशु मूलकस्य फलान्विता ।
घृतेन मधुना लीढा कास बालस्य दुस्तरम् ॥४५

॥ इति कासश्वासो ॥

विडंगं मधुना लीढ्वा[2] पौष्कर वा सशिग्रुकम् ।
आशुकर्णीतवैकचो कृमिभ्यो मुच्यते शिशुः ॥४६

मुस्त विडंगं मगधाशुपर्णी कम्पिल्लको दाडिमवल्कलेन ।
एतत् कृमि सत्वरमुग्रवेगा क्षौद्रेण लीढा क्षमयत्यसंशयम् ॥४७

---

१. 'मुद्रयुक्तं च गोक्षीरां' इत्यन्यत्र । २. पुस्तके तु 'लीहो' इति पाठः ।

यवचूर्णं कृमिरिपु मगधा मधुना सह[1] ।
भक्षयेत् पाण्डुरोगघ्नं युक्ति शूलहरं परम् ॥४८

॥ इति कृमिः ॥

प्रायो रजस्त्रैफलचूर्णयुक्तं गोमूत्रशुद्धं मधुनाऽवलीढम् ।
पाण्डू सकृसानुमान्द्य शूलं स सोर्को शमयेदवश्यम् ॥४९

॥ इति पाण्डु. ॥

पथ्याऽश्वगंधा शबरी बिदारी समं त्रिकंटश्च बलात्रयेण ।
पुनर्नवैतत्क्षयरोगमुग्र क्षौद्रेण लीढं क्षपयत्यवश्यम् ॥५०

शिलाजतुव्योषविडंगलोहताप्याभयाभिर्विहितोऽवलेहः ।
सर्प्पिर्मधुभ्यां विधिना प्रयुक्तः क्षय[2] विधत्ते सहसा क्षयस्य ॥५१

नवनीत सिता क्षौद्र लीढा क्षीरभुजं परम् ।
करोति पुष्टिं कायस्य क्षतक्षयमपोहति ॥५२

वासा महौषधिर्व्याघ्री गुडूची च सृतं जलम् ।
प्रपीतं शमयत्युग्रं श्वासकासक्षयं ज्वरान् ॥५३

॥ इति क्षयरोग. ॥

मागधी मागध मूल नागरं मिरचान्वितम् ।
क्षौद्रेण लीढ कफज स्वरभेदं व्यपोहति ॥५४

यष्ट्याह्वजीवनीमूर्वा काकोलीद्वयसाधितम् ।
पयः पित्तोद्भवं हन्ति स्वरभेद सुदारुणम् ॥५५

॥ इति स्वरभेद ॥

जीरकद्वयमम्लीकवृक्षाम्लं दाडिमान्वितम् ।
शैलार्द्रक रस शीघ्रमरुचिं हन्ति दुष्करम् ॥५६

द्वे पले दाडिमादष्टौ षंडाव्योषपलत्रयम् ।
त्रिसुगंधि पल चैक चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥५७
विचार्यैव तु मतिमान्नौषधे च प्रयोजयेत् ।

॥ इति अरोचकम् ॥

१. पुस्तके तु 'सह मगधामधुनौ' इति पाठः । २. 'क्षयं' इति पुस्तके ।

कोलास्थी पद्मकोशीरं चन्दन नागकेशरम् ।
लीढ क्षौद्रेण वालानां मूर्च्छानाशनमुत्तमम् ॥५८

द्राक्षामामलक स्विन्नं पिष्ट्वा क्षौद्रेण सयुतम् ।
सर्वदोषभवं मूर्च्छां सज्वरा नाशयेद् ध्रुवम् ॥५६

सी(शी)ता प्रदेहा(या) मणय· सहारा सेकावगाहा व्यजनस्य यस्त्व ।
लेहान्नपानादि सुगंधि शीतं मूर्छासु सर्वासु परम्प्रशस्तम् ॥६०

पद्मक चन्दन तोयमुशीरं श्लेष्मचूर्णितम् ।
क्षीरेण पीत वालानां दाह नाशयति ध्रुवम् ॥६१

कर्पूरचन्दनोशीर लिप्तागकदलीदलैः ।
प्रशस्ते सस्तरे धीमान् स्वापयेद्दाहपीडितम् ॥६२

परिषेकावगाहेषु व्यजनाना च सेवनैः ।
शस्यते शिशिर तोय तृपादाहोपशान्तये ॥६३

॥ इति दाहः ॥

शिरीषनक्तमालाना वीजैरजितलोचनः ।
चेतोविकार हन्त्याशु तापापस्मारतन्त्रिका ॥६४

सिद्धार्थकवचाहिंगुशिवनिर्माल्यगन्धकैः ।
निर्मोकपिच्छलवर्णेन् केशै· कुष्टसयुतैः ॥६५
गृहशूकरमार्जारश्वविष्टारिष्टपत्रकैः ।
एभिर्घृतप्लुतैर्धूमः सर्वोन्मादग्रहापहः ॥६६

॥ इति उन्मादः ॥

कूष्माण्डकरस दत्वा मधुकं परिपेषयेत् ।
अपस्मारविनाशाय तत्पिबेत्सप्तवासरान् ॥६७

॥ इति अपस्मारः ॥

गोसर्प्प साधित मूत्र दधिक्षीरस(श ?)क्रद्रसैः ।
चातुर्थिकज्वरोन्मादसर्वापस्मारनाशनम् ॥६८
पुनर्नवैरण्डजवातसिद्धिकर्पासजैरस्थिभिरारनालैः ।
स्विन्नैर [मी]भिस्त्विति षड्भिरेव स्वेदः समीरार्त्तिहरो नराणाम् ॥६६

॥ इति वातनाशः ॥

वासकस्वरसः पीतः सितामधुसमन्वितः ।
तथैव वटरोहाणां रक्तपित्तं विनाशयेत् ।।७०

पालाशपुष्पक्वाथेन वामाया. स्वरसेन च ।
चतुर्गुणेन ससिद्धं रक्तपित्तहरं घृतम् ।।७१

रसो दाडिमपुष्पाणां दूर्वायाः स्वरसोऽथवा ।
नस्येन नाशयेत्तूर्णं नासिकारक्तमुद्धतम् ।।७२

॥ इति रक्तपित्त ॥

हिंगुमाक्षिकसिन्धूकैः पक्वां वर्त्ति सुवर्त्तिताम् ।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्याद् गुदावर्त्तविनाशनम् ।।७३

॥ इति गुदावर्त्तः ॥

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धव जीरके द्वे,
समधरणघृतानामष्टमो हिंगुभागः ।
प्रथमकवलभुक्त सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्नि वातगुल्म निहन्ति ।।७४

॥ इति वातगुल्महरं हिंग्वष्टकम् ॥

शुठीकणापुष्करकेतकीनां विधाय चूर्णं ककुभत्वचो वा ।
राष्मा(स्ना) निज वा मधुनावलीढं हृद्रोगमेतत् शमयत्युदग्रम् ।।७५

॥ इति हृद्रोगः ॥

मेधा(धा ?)मृतानागरवाजिगधाधात्रीत्रिकटैर्विहितः कषायः ।
क्षौद्रेण पीतः शमयत्यवश्य मूत्रस्य कृच्छ्रं पवनप्रसूतम् ।।७६
कुशेषुकासा शरदर्भयुक्ता प्रख्यातमेतत्तृणपंचमूलम् ।
[1]'उत्क्वाथ्य पीतं' मधुना च मिश्र कृच्छ्रं सदाहं सरुजं निहन्ति ।।७७

यवक्षारयुतः क्वाथः स्वादकं कटसंभवः[2] ।
पीतः प्रणाशयत्याशु मूत्रकृच्छ्रं कफोद्भवम् ।।७८

---

१. 'सक्वाथ्यपितं' इत्यन्यत्र । २. 'काससंभवः' इत्यपि पाठः ।

स्वदंष्ट्राविहितः क्वाथः शिलाजतुसमन्वितः ।
सर्वदोषोद्भवं हन्ति कृच्छ्रं नास्त्यत्र संशयः ॥७९

कषायोऽतिबलामूलत्रपुसीबीजसाधितः ।
शिलाजतुयुत पीत्वा मूत्रकृच्छ्र विनाशयेत् ॥८०

॥ इति मूत्रकृच्छ्रः ॥

पीत्वा दाडिमतोयेन विस्वै(षै)लाबीजज रसः ।
मूत्रघातात्प्रमुच्येत सार वा लवणान्वितम् ॥८१

कर्पूरवर्त्ति मृदुना लिंगछिद्रे निधापयेत् ।
शीघ्रं तस्या महाघोरान्मूत्रवधात्प्रमुच्यते॥८२

क्वाथैः किंशुकपुष्पाणि सेकस्तैरेव निर्मितः ।
उपनाहार्थं वा हन्ति मूत्रकृच्छ्र सुदारुणम् ॥८३

॥ इति मूत्राघात. ॥

एरण्डतैल सपय पिबेद्यो गव्येन मूत्रेण तदेव वापि[1] ।
सगुग्गुलुं प्रौढरुज प्रवृद्धा सवासवृद्धि सहसा निहति ॥८४

॥ इति अंचकुरंडवृद्धि ॥

वनकर्पासिकामूल तडुलै सह योजितम् ।
पक्त्वापूपलिका खादेदपचीनाशकारणम् ॥८५

॥ इति गण्डमाला ॥

काचनारत्वचः क्वाथस्तापे चूर्णावचूर्णित. ।
निर्गत्यान्त.[2]-प्रविष्टां तु मसूरी बाह्यतो नयेत् ॥८६

गर्दभीदुग्धपानेन तुलसीपत्रभक्षणात् ।
मसूरी बहिरत्वेति तत्क्षणान्नात्र सशयः ॥८७

भस्मनैकेचिदिच्छति केचिद् गोमयरेणुना ।
कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सुरसादिभिः ॥८८

वेदनादाहशान्त्यर्थं शिशूनां च विशुद्धये ।
मौक्तिकं काच्छप प्रष्ट प्रवालं प्रपिवेन्नर. ॥८९

१. 'पीत्वा' इत्यपि संभाव्यः । २. 'निर्मलान्तः' इत्यपि पाठः ।

घृष्ट कुसुमतोयेन क्षुद्रशीतलिकां जयेत् ।
स्तोत्रमेतत्सदा पाठ्य रोगिणोऽग्रे मुहुर्मुहुः ॥९०

॥ ॐ नमः शीतलायै । स्कन्द उवाच ॥

भगवन् देवदेवेश शीतलायाः स्तव शुभम् ।
वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकभयापहम् ॥९१

॥ ईश्वर उवाच ॥

वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगापहारिणीम् ।
यामासाद्य निवर्त्तेत विस्फोटकभय महत् ॥९२

शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्दाहपीडितः ।
विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य न जायते ॥९३

शीतला तोयपानेनाभिषेकान्नात्र संशयः ।
जप्त्वा ह्युदकमध्ये[1] तु ध्यात्वा पूजयते नरः ।
विस्फोटकभयं घोरं भय तस्य न जायते ॥९४

शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च ।
प्रनष्टचक्षुपः पुंसास्त्वमाहु(यु)र्जीवनौषधम् ॥९५

शीतले तनुजान् घोरान्व्रणान्हरसि दुस्तरान् ।
विस्फोटकविवर्णानां त्वमेकामृतवर्षिणी ॥९६

गलगंडग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ।
त्वदनुध्यानमात्रेण शीतले यान्त्यसंशयम् ॥९७

न मत्रं नौषधं किञ्चित् पापरोगस्य विद्यते ।
त्वमेका शीतले त्राता नान्यां यास्यामि देवताम् ॥ ९८

मृणालतन्तुसदृशां नाभिहृत्पद्मसंस्थिताम् ।
यस्त्वां सचिन्तयेद्देवी तस्य मृत्युर्न जायते ॥९९

अष्टक शीतलायाश्च यः पठेन्मानव सदा ।
विस्फोटकभय घोर कुतस्तस्य प्रजायते ॥१००

१. पुस्तके तु – 'यस्तोमुदकमध्ये' इति पाठः ।

श्रोतव्य पठितव्यं च श्रद्धाभक्तिसमन्विते. ।
उपसर्गविनाशाय पर स्वस्त्यृयन महत् ॥१०२
शीतलाष्टकमिद देव न देय यस्य कस्यचित् ।
दातव्य हि सदा तस्मै भक्तिश्रद्धाहितो हि यः ॥१०३

इति स्कदपुराणोक्तशीतलास्तोत्रम् ॥

शीतलेन जलेनैव चर्चया(चचर्या) च समन्वितम् ।
हरिद्रा य· पिबेत्तस्य न दोष. शीतला भवेत् ॥१०४
शीतला सुक्रिया कार्या शीतला रक्षया सह ।
बध्नीयान्निम्बपत्राणि परी(रि)तो भवनान्तरे ॥१०५
चन्दनं वासको मुस्त गुडूची द्राक्षया सह ।
एषा सितकपायस्तु शीतलाज्वरनाशनम् ॥१०६
कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ।
स्फोटेष्वधिकदाहेषु रक्षारेणुकरो हितः ॥१०७

॥ इति शीतला ॥

इति श्रीकल्याणेन कृते वालतन्त्रे शीतलाचिकित्साकथनं नाम त्रयोदश पटल' ॥



चतुर्दशः पटल·

मन·शिलाचदनलोध्रपद्मरसाजन मुस्तनिशामयाख्यै· ।
सगैरिकाक्कविहितप्रलेपो बहिः प्रसन्ने नयने करोति ॥१
ससैन्धव लोध्रमथाज्यमृष्टं सौवीरपिष्ट सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतन तन्नयनस्य कुर्यात्कण्डू च दाह च रुज च हन्यात् ॥२
चंदन मधुकं लोध्रं जातिपुष्पाणि गैरिकम् ।
प्रलेपो दाहरोगघ्नस्त्वक्ष्यभिष्यन्दनाशनः ॥३
शखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मन.शिला ।
मन.शिलार्धं मरिच मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥४
वारिणा तिमिर हन्ति अर्बुद हन्ति मस्तुना ।
चिपिट मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुन्नतम् ॥५

धत्तूरफलकर्पूरे निघृष्य मधुनांऽजयेत् ।
नेत्ररोगाः प्रणश्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव ॥६

॥ इति नेत्रम् ॥

हिंगुव्योषविडंगविद्युलवचारुक्तीक्ष्णगन्धायुतै-
लक्षाश्वेतपुनर्नवाकुटजकैः पुष्पोद्भवै सौरसैः ।
इत्येभिः कटुतैलमेतदनलैर्मन्दे समूत्र घृतम्,
पीत नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयेभ्यो हितम् । ॥७

॥ इति नासिका ॥

कपित्थमातुलिंगाम्लश्रृंगवेररसैः शुभैः ।
सुखोष्णै पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशातये ॥८
अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं तैलेन लिप्त शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोय श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूल बहुवेदन च ॥९
घृष्ट रसाजन नार्याः [1]क्षीरणा क्षौद्रसयुतम् ।
प्रशस्यते शिरोजेऽपि सा स्रावे पूतिकर्णिका ॥१०
गुडेन शुंठी सह सिंधुजेन कृष्णाऽथवा केवलमच्छमम्भः ।
पयो घृतं वा विनिहंति शीघ्र शिरोविरेकेण शिरोविकारान् ॥११

॥ इति शिरोरोगः ॥

मन्दोष्ण धारयेच्छुद्ध हिंगु दन्तान्तरे स्थितम् ।
तेन प्रणाशयत्याशु क्रिमिदशो महागदः ॥१२
ओष्ठप्रकोपसजाते रक्तमोक्ष च कारयेत् ।
त्रिफला खदिर क्वाथे धावन लेपन तथा ॥१३
जातीपत्रामृताद्राक्षापाठादार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गडूषान् मुखपाकजित् ॥१४
पचवल्कलकषायो वा त्रिफलाक्वाथ एव वा ।
सक्षौद्रः शमयत्याशु गंडूषैरास्यपाकजित्[2] ॥१५
पटोल निम्बज वाम्रमालती निंबपल्लवा ।
पचवल्कलक्वाथोऽय गंडूपैर्मुखपाकजित् ॥१६

१ 'क्षीरेण' इति सभाव्य । २. पुस्तके तु 'पाकमास्यजित् ।'

दार्वीगुडूचीसुमन·प्रवालद्राक्षायवा सत्रिफला कपायैः ।
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽय मुखस्य पाक शमयत्युदीर्णम् ॥१७

वध्याकर्कोटकीमूल तडुलीमूलसयुतम् ।
अगदेय महावीर्यः पीत. सर्वविपापह ॥१८
शिखावलशिखावाणपुखावासववारुणी ।
लीढा घृतेन सर्वाणि विपाणि क्षपयेन्नर. ॥१९

॥ इति सर्पादिविषः ॥

शिखिकुर्कुटवर्हणी सैन्धव तैलसर्प्पिपी ।
धूमो हन्ति प्रयुक्तोऽय कीटवृश्चिकज विपम् ॥२०

पलाशबीज रविदुग्धपिष्ट घृतेन पिष्ट्वा सशिरीपवीजम् ।
कृष्णाऽथवा हन्ति कृतोग्रपीडा विषं प्रलेपाद्भुवि वृश्चिकस्य ॥२१
अजाविकल्कः सह सैन्धवेन मध्वाज्यमिश्रो विहित· कदुष्णः ।
दशे प्रलिप्तो दहनेन तुल्या पीडां क्षणात् कृन्तति वृश्चिकस्य ॥२२

॥ इति वृश्चिक· ॥

कर्षोन्मितं हाटकवाणपुंसां (पुङ्खा) मूलं पिबेत्तंडुलतोयमिश्राम् ।
सिफासमेतं कनकस्य युक्ता दुग्धेन नाशाय श्व(शु)नां विषस्य ॥२३

॥ इति श्वानः ॥

असिततिलसमेतैः किं न भृंगस्य पत्रैः,
प्रतिदिनमुपयुक्तैः स्यान्नरः कामरूपः ।
अमृतफलसितायै(ढ्यैः) चूर्णितैस्तैर्हि मासात्,
प्रहतगदसमूहः कृष्णकेशश्चिरायुः ॥२४

अथाश्वगंधा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखांबुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते वाल(ल्ये)शरीरस्य(स्थ) मिवांबुद(वृ)ष्टिम्॥२५

॥ इति शरीरम् ॥

ग्र थान् विलोक्य प्रचुरप्रयोगान् पद्यैः स्वकीयैः कतिचित्तदन्यैः ।
प्रोक्ता चिकित्सा रुचिरा शिशूनां ता देशकालादि समीक्ष्य कुर्यात् ॥२६

अहिच्छत्रान्वये जातः पण्डितैकशिरोमणिः ।
रामचन्द्रार्चनरतो रामदास. सतां प्रियः ॥२७

विद्वज्जनाल्हादकरो मनस्वी महीधर. सर्वजनाभिवन्द्यः ।
लक्ष्मीनृसिंहांघ्रिसरोजभृंगस्तदात्मजोऽभूद्विदितागमार्थः ॥२८

कल्याण इत्युद्गतनामधेयस्तदात्मजो ग्रंथवरान् विलोक्य ।
परोपकाराय बबन्ध तन्त्र सतां समालोकनयोग्यमेतत् ॥२९

युगवेदरसाकास(सैकस)मिते वर्ष नभे रवौ ।
पूर्णिमायां चकारेदं लिलेख च शिवालये ॥३०
स्वभावात्कृशकायो यः स्वभावादल्पपावकः ।
स्वभावादबलो यस्य तस्य नास्ति चिकित्सितम् ॥ ३१

इति श्रीकल्याणेन कृते बालतंत्रे नानाप्रयोगकथनं नाम
चतुर्दशः पटलः ॥१४॥ सम्पूर्णम् ।

सं. १८६४ शाके १७५२ मार्गशीर्ष कृष्णा ७ रवौ वासरे ।
लिप्यक्कृत पौकरमल ब्राह्मण लिखी झालरापाटणमध्य
॥ शुभं भवतु कल्याणमस्तु ॥

